

# श्रीतसर्वस्वम्

अथवा

श्राद्धकृत्यमीमांसा, पिण्डपितृयज्ञमीमांसा,  
महालयश्राद्धमीमांसा, च

अर्थात्

शतपथ-गोपथ-आदि ब्राह्मण तथा व्याख्यायन शाङ्खायन कात्यायन  
वैश्वानरा व्याख्यायन शाङ्खायन द्राह्मण आपस्तम्ब प्रभृति  
मुनि प्रणीत श्रीतसूत्रनामका वल्प सूत्रों द्वारा वैदिक मंत्रों का  
विनियोग निरूपण पुरस्सर मृतपितरों के उद्देश्य से  
पिण्डपितृयज्ञ निरूपणपूर्वक आश्विनकृष्णपक्ष में  
श्राद्धकर्तव्यता प्रतिपादन पर पूजित विचार.

श्रीमत्परमहंसनिखिलशास्त्रनिष्णातस्वामिबालरामोदासीनो-  
द्भासित.

स्वाम्यात्मस्वरूपशास्त्रिकृत अपेक्षितानुक्तपूर्णविवरणोद्दीपित  
औ संशोधित.

सिंधुदेशु शेखर सिकारपुर की पियारी संगत के  
हरिभगवानुदास आदि सत्संगियों की मार्पना  
से संकलित और प्रकाशित.



बटना—“खड्गविलास” प्रेस—बांकीपुर.

साहिबप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित.

१८६८.



શ્રીમતિ સિદ્ધાસ્ત્ર નિષ્ણાત સ્વામી બાહરાગ પદ્માચીન  
 સંવ. ૧૯૬૭



श्रीगणेशाय नमः

श्रीगणेशाय नमः

पुनः १९६१

ॐ

नमोऽस्तुभ्योभिणे ।

नमः श्रीपूज्यपादशिक्षाप्रदेश्यः

श्रीगुरुवृत्ताभिधेभ्यो गुरुभ्यः

नमः श्रीशरणापन्नपरित्राणपरायणाय । सर्वतन्त्रस्वतन्त्राय श्रीलबालरामाय गुरवे ।

“ दाम्यत, दत्त, दयध्वम् ” वेद ।

संवाधेन ।

आस्तिकजन !

‘आम्नाश्च सिक्ताः पितरश्च तृप्ताः’ इस कथन का अनुसरण कर तीर्थयात्रा तथा धर्मोपदेश के लिये पंजाब, सिंध, काठीयावाड़, गुजरात, मालवा प्रान्त (१) स्थानों में पर्यटन करते हुये श्रीलनिखिलशास्त्रनिष्णात स्वामी बालराम उदासीन जी के दिये हुये व्याख्यानों का जिस प्रकार से इन स्थानों में असर हुआ है वह तो विदित ही है परन्तु इन स्थानों में जो स्वामी जी के श्राद्धविषयक व्याख्यान हुआ करते थे उन व्याख्यानों को श्रवण कर अनेक धार्मिक लोकों ने यह प्रार्थना की थी कि “यदि यह श्राद्धविषयक व्याख्यान पुस्तकाकार से मुद्रित होकर स्थान २ में प्रचलित हो जाय, तो बहुत ही भारत का उपकार होय ” औ वीच में जब स्वामी जी सिंध सिकारपुर में पधारे थे तबवहां के निवासी पियारीसंगत के सत्सङ्गियों ने भी (२) विशेष कर के यह

(१) कटाक्षराज, पिण्डदादनखान, मेहरा, रावलपिण्डा, डेराइस्मेलखान, डेरागाजीखान, मुजफ्फरगढ़, मुलतान, सूजाबाद, बदायलपुर, सखर, सिकारपुर, किराची, गोमतीद्वारिका, बेटद्वारिका (पोरबन्दर), मुदामापुरी, जूनागढ़, प्रभास, थानादेवलीदरवार, भाउनगर, सिवहर, अहमदाबाद, नडियाद, डाकौर, रतलाम, मन्दसौर, उज्जैन, इन्दौर इत्यादि प्रधान स्थानों में स्वामीजी के व्याख्यानों का प्रभाव आबालवृद्ध प्रसिद्ध है ।

(२) यद्यपि पियारीसंगत के सत्सङ्गी अनेक हैं तथापि प्रधानता से कार्यवाहक—श्रीहरिभगवान रहेगा, श्रीपीसूषल, श्रीचौधराम, श्रीतेजभानुदास, श्रीउद्धवदास, श्रीसाजनदास, श्रीगलाराम यह सात मदाशय है ।

प्रार्थना कियी थी कि ( यहां के जो प्रियतमधर्मसभावाले समाजी हैं वह श्राद्ध को वेदविहित नहीं मानते हैं औ कभी २ मान भी लेते हैं तो संग के संग यह कह देते हैं कि जैसे ब्राह्मण श्राद्ध के योग्य लिखे हैं वैसे अब मिलते नहीं, औ संग के संग यह भी पुकारते हैं कि आश्विन के कृष्णपक्ष में जो श्राद्ध का प्रचार है वह अन्धपरम्परा है परन्तु आपके दिये हुये श्राद्धविषयक व्याख्यानों से उन समाजियों के यह सब कथन यहां के लोकों को निर्मूल औ उन्मत्तप्रलपित भान होगये हैं, औ वह समाजी भी आज कल मौन धारन करि बैठे हैं, इस लिये हमारी यह रुचि है कि इस श्राद्धविषयक व्याख्यानों का यदि मुद्रित कराकर प्रचार किया जाय तो अनेकों का भ्रम भञ्जन हो जाय, इत्यादि—

परन्तु स्वामी जी श्री द्वारिका-ग्रंभासक्षेत्र आदि तीर्थ-यात्रा के निमित्त से तथा पूर्व आरब्ध पातञ्जलदर्शन के भाषानुवाद में तत्पर होने से सावकाश नहीं ये इस लिये यह ग्रन्थ सत्वर प्रस्तुत नहीं हुआ था फिर जब द्वारिका आदि की यात्रा को समाप्त कर डाकौर जी में आये तब पातञ्जल-दर्शन की समाप्ति कर उज्जैन जी की यात्रा तथा “श्रोतस-र्वस्व” का आरंभ किया सो अब यह भी सर्वान्तर्ध्यामी की कृपा से समाप्त हो गया है, आप लोक इस का अव-लोकन कर जन्म औ स्वामी जी का परिश्रम सफल करें ।

संवीधक

स्वामी आत्मस्वरूप शास्त्री ।

## श्री शिवहर्ष कवि कृत कविता ।

चारो वेद शिखा शब्द शास्त्र है सुचंचु स्वच्छ ज्योतिष रमल  
नैत्र शिखा गन्ध धाम हैं । कर्ण है निरुक्त कल्प न्यायसांख्य  
पञ्च जाको नीति कंद पग वैन श्रुति अभिराम हैं ॥ सत यंथ  
घन देखि नितंत सुदित मन जैन यंथ मर्पन ते कीनो महि-  
पाम हैं । कहै शिवहर्ष ब्रह्म ध्यान है अहार मंजु विद्यागन  
विपिन मयूर बालराम हैं ॥ १ ॥

ज्ञानन विचार चारु नासिका परिसकार चक्षु योग ध्यान  
काव्य शक्ति शिखा धाम हैं । साहिति मिर्मासा कर्ण अर्थ शक्ति  
गर्ज तीव्र वेदन की शाखा केश वृन्दन ललाम हैं ॥ कल्पना  
वक्त्रत्व तीक्ष्ण पंजा मजबूत अति हिरद पण्डही मत गर्व कीनो  
पाम हैं । कहै शिवहर्ष कवि जंबूद्वीप मध्य एक विद्यामरु कन्दरा  
मैं सिंह बालराम हैं ॥ २ ॥

देशन मो जाय जाय नास्तिक जमाति मध्य लिखर सुनायो  
सोई वांस बुद्धि घर मैं । कोरति सुपट चारु ध्यान को सुगोट  
स्वच्छ ज्ञान को विवाद पट्टा लगो सगसर मैं ॥ कहैं शिवहर्ष  
जामे उत्तम विचार गुच्छ गुण सूत्र विधो युक्ति दीखत फहर  
मैं ॥ उटासीन बालरामजू की शास्त्रदिग्विजै ध्वजा लहालह  
लहरात जंबूद्वीप भर मैं ॥ ३ ॥

जप तप है करार उत्तम विचार धार ध्यान सु भंवर युक्ति  
बीचि मन रंगिनी । आसन सुदेह योग माधन मगर महा मुद्रा  
बहु मोन भोगा बुद्धि ब्रह्म संगिनी ॥ कहैं शिवहर्ष जामे घाट न  
लाखात नेको जैनमत ग्रन्थ कूल वृत्तन की खंगिनी । संत शिरो-

मणि श्री उदासी बालरामजू की जंबूद्वीप बठी शास्त्र कोरति तरगिनी ॥ ४ ॥

जन्यो कैधों विधि निज वेद के उधारिवे को कैधों मनकाटि कीवे ब्रह्मागुन गान हैं । निज कृत सूदनको भाषा अर्थ भाषिवे को कलि मध्य भयो वादरायन मज्ञान हैं ॥ कैधोंगमचरित बखानिवे को बालमीक जैनमत खंडिवे को शंकर सुज्ञान हैं ॥ कहै शिवहर्ष कैधों बालराम स्वामी भयो ज्ञान उपदेश दीवे को नारद धिमान हैं ॥ ५ ॥

मन वच कर्म करि राखत सुप्रेम पद आज्ञा पालिवे मै बन्यो शिष्यन को भूप हैं । बाल ब्रह्मचारी तैसो उत्तम विचारि ज्ञान ब्रह्म ध्यान धारी ध्यान धारिन को दूप हैं ॥ कहै शिवहर्ष गुरु कृत ग्रन्थ युक्ति भाषि नास्तीक वृन्दन को करि देत चूप हैं । यथा वादरायण के शिष्य शुकदेव भये तथा बालरामजू के आत्मस्वरूप हैं ॥ ६ ॥

विमल पद्य गीर राजत बिचित्र अति सहज सुभाव बैन बोलत सुधा सी हैं । अष्ट योग साथै ब्रह्म ध्यान अवराधै मंजु इट्टी टग बांधै ज्ञान रत्नन की रासी हैं ॥ शब्दशास्त्रन्याय सांख्य कल्प वो निरुक्त योग वेद उपवेद त्यों मिमंसिक प्रकासी हैं । कहै शिवहर्ष कवि स्वामी बालरामजू को शिष्यवर आत्मस्वरूप जो उदासी हैं ॥ ७ ॥

ओम्

नमो ऽन्तर्यामिणे ।

## ॥ पीठिका ॥

“सद्योजातं \* प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः,  
भवे भवे नातिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः”

यजु० तै० शा० प्र० १० यजु० ४९ ।

“यद्वक्त्राम्बुजनिःसृता सुललिता श्रौती सती भारती,  
पीता कर्णपुटेर्दुतं वितनुते श्रौतायने सन्मतिम्,  
आम्नाता श्रुतिमस्तमेयविषयां निष्ठां नि धत्ते हृदि,  
वन्देहं तमशेषदोषविधुरं श्रीदेशिकं नानकम्”

इह किल ये केचित्कुलकज्जलाः पिण्डीशूरा + अना-  
घातप्राच्योदीच्यसीमांसागन्धाः ( कथमन्यदीयेनानुष्ठानेनोदा-  
सीनेन्यस्मिन् जने फलं सं क्रमते न हि चेत्रेणोपचितस्य  
कर्माशयस्य विपाको भेत्रेणोपभुज्यते न हि वा जातु भेत्रो-  
ऽभ्यवहरति चेत्रश्च तृप्यतीति दृष्टचरं नाम) इत्येवं गेहेविचि-  
तिनः (१) सन्तो ऽपत्यानुष्ठितपितृकृत्येन प्रेतपितृप्रभृतितृप्ति-  
मपलपन्ति, प्रमाणयन्ति च “शास्त्रदेशितं फलमनुष्ठातरि”  
इति जैमिनीयं न्यायं. तेषां व्यामोहापोहाय मनाक् परा क्रम्यते ।

\* सद्योजातनामकं यच्छिवस्य पश्चिमं चक्रं तत्प्रधानं महेश्वरमहं प्रपद्ये=  
प्राप्नोमि, तस्मा एव च भवोद्भवाय=संसारादुद्धर्त्रे मे नमोस्तु, किंच भवे भवे=  
‘पौनः पुन्येन जन्मने मां न भजस्व=मेरथ किन्तु अतिभवे=संसारातिलङ्घन-  
निमित्तं मां भजस्व तत्त्वज्ञानाय मेरयेत्यर्थः ॥

१) पिण्डाशनादन्यस्मिन् कार्ये निर्विक्रमाः ॥

(१) गेह एव स्थित्वेदं युक्तमिदमयुक्तमिति ये विचिन्वन्ति च विद्वद्गो-  
ष्ठ्यां त एवमभिधीयन्ते ॥



तत्रेदमेव प्रथमतो वि विच्यते—योयं जैमिनीयो न्याय  
उपोद्वलकत्वेनोद्घाटितः स किमप्रतिहतप्रसरत्वेन सार्वत्रिक  
उतौत्सर्गिकः, आद्ये कथमृत्विगाद्यनुष्ठितकर्तोर्यजमानस्य  
तत्तत्फलावाप्तिः, कथं वा जादूलिकोच्चरितान्मन्त्राद् दष्टस्य  
विपापगमः, द्वितीये सिद्धं सामान्यविधित्वं, तथा च निष्पन्नं  
नः समीहितं, विशेषवचनानननिरीक्षणेन प्रतिहतप्रसरत्वेन  
प्रेतकृत्यप्रभृतौ तन्नयायाप्रवृत्तेः, ॐ अत एव “आत्मान्तरगुणा-  
नामात्मान्तरेऽकारणत्वाद्” इति सूत्रव्याख्यावसरे शाङ्कर  
उपस्कारे (प्रत्यात्मनिष्ठाभ्यामेव धर्माऽधर्माभ्यां सुखदुःखे न  
व्यधिकरणाभ्यामन्यथा येन यागहिंसादिकं न कृतं तस्य त-  
त्फलं स्यादिति ~~अप्युक्तं~~ नाभ्यागमश्च प्रसज्येत, इत्येवं  
सूत्राशयमुपवर्ण्य, ननु नायं नियमः पुत्रोऽपितृयज्ञादौ व्यभि-  
चारात् तथाहि—पुत्रेण कृतस्य श्राद्धादेः पितरि फलत्वश्रवणात्  
पित्रा च कृतायाः पुत्रेष्टेः पुत्रे फलश्रवणाद्, न च स्वर्गभागे-  
पितृकत्वस्य तेजस्विपुत्रकत्वस्य च फलस्य पुत्रपितृगामितया  
सामानाधिकरण्यमेवेति वाच्यं श्रुतिविरोधात्—पितृतृप्त्यादेः  
पुत्रतेजस्वितादेरेव फलस्य श्रवणात्, फलान्तरस्य च गौर-  
वपराहतत्वाद्, अस्तु तर्ह्यपूर्वं फलं कर्तरि स्वर्गस्तु पितरीति  
चेन्न व्यापारस्य फलसामानाधिकरण्यनियमाद्, अन्यथा  
श्राद्धानन्तरं मुक्ते पुत्रे पितुः स्वर्गो न स्याद्, न स्यादिति चेन्न  
मुक्ते पितरि साक्षादपि श्राद्धात्फलं न स्यादिति तुल्यत्वाद्,

\* यथा “ऋत्विज उप गायति” इत्यविशेषेण धृतमपृत्विज्ञासु  
पगानं ‘नाध्वर्युरूप गायति’ इति विशेषश्रवणेनाध्वर्युव्यतिरिक्तविषय  
सत्त्वल्प्यते तथा सामान्येन प्रवृत्तौप्ययं न्यायो विशेषश्रवणात् प्रेतकृत्यायति-  
रिक्तविषयोऽभ्युपेय इत्याकृतम् ।

इत्येवमाशङ्क्य शास्त्रदेशितं फलमनुष्ठातरि इत्यस्यौत्सर्गिकत्वात्  
 कचिद् बलवता बाधकेनापोद्यत्वात्, प्रकृते च पितृपुत्रगत-  
 फलश्रवणस्यैव बाधकत्वात्, तथा सत्यतिप्रसङ्ग इति चेन्न तादृ-  
 शश्रुतेरेवातिप्रसङ्गनिवारकत्वाद् ) इत्येवं समाधायास्यौत्स-  
 र्गिकत्वमास्थापितं मिश्रैः, एवं च (यस्य यत्फलमुद्दिश्य यत्कर्म  
 विहितं तस्य तत्फलम्) इत्ययमेव न्यायो व्यभिचारविधुरत्वेन  
 प्रचुरप्रचार आदरणीयो न पूर्वोक्त इत्यायातम्, अत एव (१)  
 द्वादशलक्षण्यां (यद् इदं 'वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत्पुत्रे  
 जाते' इतीष्टिं विधाय यस्मिन् जात एतामिष्टिं निर्वपति  
 पूत एव स तेजस्व्यन्नाद इन्द्रियावी पशुमान् भवति,  
 इत्यादि फलमान्नायसे तत्किमिष्टिकर्तुः पितुरुत पुत्रस्येति  
 संशय्य कर्मानुष्ठानफलयोर्वैयधिकरणपरिहाराय पितुरेव  
 फलमिति प्रत्यवस्थाय पुत्रोद्देशेन कृतत्वाद्- 'यस्मिन् जाते  
 निर्वपति स पूतो भवति' इति वाक्यशेषे स्पष्टं पुत्रगा-  
 मित्वश्रवणाच्च पुत्रस्यैव पूतत्वादिकं फलमित्याशयेन  
 'फलसंयोगस्त्वचोदितेन स्यादशेषभूतत्वाद्, ॥ इत्येवं समाहितं  
 जैमिनिना मुनिना +

केचित्तु " संलापस्पर्शनिश्वाससहयानासनाशनाद् या-  
 जनाध्यापनाद्यौनात्पापं सं क्रमते नृणाम् " इति देवलव-  
 चनबलेनैतस्विजनयाजनाध्यापनसहासनयानशयनयौनानुष्ठा-

( १ ) अत एव = 'यस्य यत्फलमुद्दिश्य यत्कर्म विहितं तस्य तत्फलम्',  
 न्यायाङ्गीकारादेव । \* जैमि० अ० ४ पा० ३ अधि० १७ ।

† ' शास्त्रदेशितं फलमनुष्ठानरि ' इति न्यायाङ्गीकारे त्विदं जैमिनीयं  
 समाधानं व्याकृत्यतेति भावः ।

तत्रेदमेव प्रथमतो वि विच्यते—योयं जैमिनीयो न्याय  
 उपोद्बलकत्वेनोद्घाटितः स किमप्रतिहतप्रसरत्वेन सार्वत्रिक  
 उत्तौत्सर्गिकः, आद्ये कथमृत्विगाद्यनुष्ठितकर्तोर्यजमानस्य  
 तत्तत्फलावाप्तिः, कथं वा जाहुलिकोच्चरितान्मन्त्राद् दष्टस्य  
 विपापगमः, द्वितीये सिद्धं सामान्यविधित्वं, तथा च निष्पन्नं  
 नः समीहितं, विशेषवचनानननिरीक्षणेन प्रतिहतप्रसरत्वेन  
 प्रेतकृत्यप्रभृतौ तन्नद्यायाप्रवृत्तेः, ० अत एव “आत्मान्तरगुणा-  
 नामात्मान्तरेऽकारणत्वाद्” इति सूत्रव्याख्यावसरे शाङ्कर  
 उपस्कारे (प्रत्यात्मनिष्ठाभ्यामेव धर्माऽधर्माभ्यां सुखदुःखे न  
 व्यधिकरणाभ्यामन्यथा येन यागहिंसादिकं न कृतं तस्य त-  
 त्फलं स्यादिति शतहाग्निरष्टाग्न्यागमश्च प्रसज्येत, इत्येवं  
 सूत्राशयमुपवर्ण्य, ननु नायं नियमः पुत्रेष्टिपितृयज्ञादौ व्यभि-  
 चारात् तथाहि—पुत्रेण कृतस्य श्राद्धादेः पितरि फलश्रवणात्  
 पित्रा च कृतायाः पुत्रेष्टेः पुत्रे फलश्रवणाद्, न च स्वर्गभागे-  
 पितृकत्वस्य तेजस्विपुत्रकत्वस्य च फलस्य पुत्रपितृगामितया  
 सामानाधिकरण्यमेवेति वाच्यं श्रुतिविरोधात्—पितृतृप्त्यादेः  
 पुत्रतेजस्वितादेरेव फलस्य श्रवणात्, फलान्तरस्य च गौर-  
 वपराहतत्वाद्, अस्तु तर्ह्यपूर्वं फलं कर्तरि स्वर्गस्तु पितरीति  
 चेन्न व्यापारस्य फलसामानाधिकरण्यनियमाद्, अन्यथा  
 श्राद्धानन्तरं मुक्ते पुत्रे पितुः स्वर्गो न स्याद्, न स्यादिति चेन्न  
 मुक्ते पितरि साक्षादपि श्राद्धात्फलं न स्यादिति तुल्यत्वाद्,

\* यथा “ ऋत्विज उप गापन्ति ” इत्यविशेषेण धृतमपृत्विजापु  
 पगानं ‘ नाध्वर्युरुप गापति ’ इति विशेषश्रवणेनाध्वर्युव्यतिरिक्तविषय  
 सत्त्वल्प्यते तथा सामान्येन मृत्तोप्ययं न्यायो विशेषश्रवणात् प्रेतकृत्याद्यति  
 रिक्तविषयोऽभ्युपेयत इत्याकृतम् ।

इत्येवमाशङ्क्य शास्त्रदेशितं फलमनुष्ठातरि इत्यस्यौत्सर्गिकत्वात्  
 कचिद् बलवता बाधकेनापोद्यत्वात्, प्रकृते च पितृपुत्रगत-  
 फलश्रवणस्यैव बाधकत्वात्, तथा सत्यतिप्रसङ्ग इति चेन्न तादृ-  
 शश्रुतेरेवातिप्रसङ्गनिवारकत्वाद् ) इत्येवं समाधायास्यौत्स-  
 र्गिकत्वमास्थापितं मिश्रैः, एवं च (यस्य यत्फलमुद्दिश्य यत्कर्म  
 विहितं तस्य तत्फलम्) इत्ययमेव न्यायो व्यभिचारविधुरत्वेन  
 प्रचुरप्रचार आदरणीयो न पूर्वोक्त इत्यायातम्, अत एव (१)  
 द्वादशलक्षणयां (यद् इदं 'वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत्पुत्रे  
 जाते' इतीष्टिं विधाय यस्मिन् जात एतामिष्टिं निर्वपति  
 पूत एव स तेजस्व्यन्नाद इन्द्रियावी पशुमान् भवति,  
 इत्यादि फलमाम्नायने तत्किमिष्टिकर्तुः पितुरुत पुत्रस्येति  
 संशय्य कर्मानुष्ठानफलयोर्वैयधिकरणपरिहाराय पितुरेव  
 फलमिति प्रत्यवस्थाय पुत्रोद्देशेन कृतत्वाद्- 'यस्मिन् जाते  
 निर्वपति स पूतो भवति' इति बाधकशेषे स्पष्टं पुत्रगा-  
 मित्वश्रङ्गाच्च पुत्रस्यैव पूतत्वादिकं फलमित्याशयेन  
 'फलसंयोगस्त्वचोदिते न स्यादशेषभूतत्वाद्, ॐ इत्येवं समाहितं  
 जैमिनिना मुनिना +

केचित्तु " संलापस्पर्शनिश्वाससहयानासनाशनाद् या-  
 जनाध्यापनाद्यौनात्पापं सं क्रमते नृणाम् " इति देवलव-  
 चनबलेनैतस्विजनयाजनाध्यापनसहासनयानशयनयोनानुष्ठा-

( १ ) अत एव = 'यस्य यत्फलमुद्दिश्य यत्कर्म विहितं तस्य तत्फलम्',  
 न्यायाङ्गीकारादेव । \* जैमि० अ० ४ पा० ३ अधि० १७ ।

† 'शास्त्रदेशितं फलमनुष्ठातरि' इति न्यायाङ्गीकारे त्विदं जैमिनीयं  
 समाधानं व्याकृत्येति भावः ।

तत्रेदमेव प्रथमतो वि विच्यते—योयं जैमिनीयो न्याय  
 उपोद्बलकत्वेनोद्धाटितः स किमप्रतिहतप्रसरत्वेन सार्वत्रिक  
 उत्तौत्सर्गिकः, आद्ये कथमृत्विगाद्यनुष्ठितक्रतोर्यजमानस्य  
 तत्तत्फलावाप्तिः, कथं वा जाहुलिकोच्चरितान्मन्त्राद् दष्टस्य  
 विपापगमः, द्वितीये सिद्धं सामान्यविधित्वं, तथा च निष्पन्नं  
 नः समीहितं, विशेषवचनानननिरीक्षणेन प्रतिहतप्रसरत्वेन  
 प्रेतकृत्यप्रभृतौ तन्नधायाप्रवृत्तेः, \* अत एव “आत्मान्तरगुणा-  
 नामात्मान्तरेऽकारणत्वाद्” इति सूत्रव्याख्यावसरे शाङ्कर  
 उपस्कारे (प्रत्यात्मनिष्ठाभ्यामेव धर्माऽधर्माभ्यां सुखदुःखे न  
 व्यधिकरणाभ्यामन्यथा येन यागहिंसादिकं न कृतं तस्य त-  
 त्फलं स्यादिति अतहाग्निरष्टाभ्यागमश्च प्रसज्येत, इत्येवं  
 सूत्राशयमुपवर्ण्य, ननु नायं नियमः पुत्रेष्टिपितृयज्ञादौ व्यभि-  
 चारात् तथाहि—पुत्रेण कृतस्य श्राद्धादेः पितरि फलश्रवणात्  
 पित्रा च कृतायाः पुत्रेष्टेः पुत्रे फलश्रवणाद्, न च स्वर्गभाणि-  
 पितृकत्वस्य तेजस्विपुत्रकत्वस्य च फलस्य पुत्रपितृगामितया  
 सामानाधिकरण्यमेवेति वाच्यं श्रुतिविरोधात्—पितृतृप्त्यादेः  
 पुत्रतेजस्वितादेरेव फलस्य श्रवणात्, फलान्तरस्य च गौर-  
 वपराहतत्वाद्, अस्तु तर्ह्यपूर्वं फलं कर्तरि स्वर्गस्तु पितरीति  
 चेन्न व्यापारस्य फलसामानाधिकरण्यनियमाद्, अन्यथा  
 श्राद्धानन्तरं मुक्ते पुत्रे पितुः स्वर्गो न स्याद्, न स्यादिति चेन्न  
 मुक्ते पितरि साक्षादपि श्राद्धात्फलं न स्यादिति तुल्यत्वाद्,

\* यथा “ ऋत्विज उप गायन्ति ” इत्यविशेषेण धृतमप्यृत्विजापु-  
 पगानं ‘ नाध्वर्युरुप गायति ’ इति विशेषश्रवणेनाध्वर्युव्यतिरिक्तविषय  
 सत्त्वल्प्यते तथा सामान्येन मृत्तोप्ययं न्यायो विशेषश्रवणात् प्रेतकृत्याद्यति-  
 रिक्तविषयोऽभ्युपेयत इत्याकृतम् ।

इत्येवमाशङ्क्य शास्त्रदेशितं फलमनुष्ठातरि इत्यस्यौत्सर्गिकत्वात्  
 कचिद् बलवता बाधकेनापोद्यत्वात्, प्रकृते च पितृपुत्रगत-  
 फलश्रवणस्यैव बाधकत्वात्, तथा सत्यतिप्रसङ्ग इति चेन्न तादृ-  
 शश्रुतेरेवातिप्रसङ्गनिवारकत्वाद् ) इत्येवं समाधायास्यौत्स-  
 र्गिकत्वमास्थापितं मिश्रैः, एवं च (यस्य यत्फलमुद्दिश्य यत्कर्म  
 विहितं तस्य तत्फलम्) इत्ययमेव न्यायो व्यभिचारविधुरत्वेन  
 प्रचुरप्रचार आदरणीयो न पूर्वोक्त इत्यायातम्, अत एव (१)  
 द्वादशलक्षण्यां (यद् इदं वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत्पुत्रे  
 जाते' इतीष्टिं विधाय यस्मिन् जात एतामिष्टिं निर्वपति  
 पूत एव स तेजस्व्यन्नाद् इन्द्रियावी पशुमान् भवति,  
 इत्यादि फलमाम्नायते तत्किमिष्टिकर्तुः पितुरुत पुत्रस्येति  
 संशय्य कर्मानुष्ठानफलयोर्वैय्यधिकरणपरिहाराय पितुरेव  
 फलमिति प्रत्यवस्थाय पुत्रोद्देशेन कृतत्वाद्- 'यस्मिन् जाते  
 निर्वपति स पूतो भवति' इति वाक्यशेषे स्पष्टं पुत्रगा-  
 मित्वश्रवणाच्च पुत्रस्यैव पूतत्वादिकं फलमित्याशयेन  
 'फलसंयोगस्त्वचोदितेन स्यादशेषभूतत्वाद्, ७ इत्येवं समाहितं  
 जैमिनिना मुनिना +

केचित्तु " संलापस्पर्शनिश्वाससहयानासनाशनाद् या-  
 जनाध्यापनाद्यौनात्पापं सं क्रमते नृणाम् " इति देवलव-  
 चनबलेनैतस्त्रिजनयाजनाध्यापनसहासनयानशयनयौनानुष्ठा-

( १ ) अत एव = 'यस्य यत्फलमुद्दिश्य यत्कर्म विहितं तस्य तत्फलम्',  
 न्यायाद्वीकारादेव । \* जैमि० अ० ४ पा० १ अधि० १७ ।

+ ' शास्त्रदेशितं फलमनुष्ठातरि ' इति न्यायाद्वीकारे त्विदं जैमिनीयं  
 समाधानं व्याकृत्यतेति भावः ।

नशालिनि जनेऽवृजिनेपि पतितदुरितसंप्रचारोररीकारेण व्य-  
भिचारान्नायमपि न्यायः सार्वभौमः ( १ ) किन्तु 'यथावचनं  
वाचनिकम्' इति जरदन्तर्वाणिवाणिरेव संरणिः अतः ( २ )  
एव " तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति लुब्धः साधुकृत्यां द्विषन्तः  
पापकृत्याम् " "तस्य प्रिया ज्ञातयः सुकृतमुपयन्त्यप्रिया दु-  
ष्कृतम् " ( ३ ) इत्येवं विद्वदनुष्ठितयोः सुकृतदुष्कृतयोर्विद्वत्प्रि-  
याप्रियकारिषु नरेषु संप्रचारं समामनन्तोऽत्रभवन्तः शास्त्रा-  
यनिनः कौपीतकिनश्च श्रद्धेयवचना मन्यन्त औपनिषदेः ,  
न्यायावतारे तु न हि प्रियकारिणोऽप्रियकारिणो वा नरानु-  
दिश्य विदुषा सुकृतं दुष्कृतं वाऽनुष्ठितमिति कथन्ते श्रद्धेय-  
वचनास्सुरित्याहुः ( ४ ) यदि त्वमूर्तयोः पुण्यपापयोः सा-  
क्षादन्यत्र संप्रचारासंभवाद्द्विद्वत्परिचर्यातिरस्क्रियाभ्यां विद्व-  
न्निष्ठसुकृतदुष्कृततुल्ये सुकृतदुष्कृते उपासकसेवकासूयकयो-  
र्जायते जातयोश्च फलत उपायनमत्र ( उपयन्ति ) इत्यने-  
नोच्यते तथा चोपासके सौहार्दमाचरणीयं न त्वसौहार्दमित्येवं  
प्रशंसापरमिदमुपायनवचनम् ( ५ ) एवमेव चाहुरशङ्कराचार्याः-  
"विद्यास्तुत्यर्थत्वाच्चास्योपायनवादस्य कथमन्यदीये सुकृतदु-

( १ ) ' यस्य यत्फलमुद्दिश्य यत्कर्म विहितं तस्य तत्फलम् ' अयमपि  
न्यायो न सार्वत्रिक इति भावः । ( २ ) वाचनिकेऽर्थे न्यायानवतारादेव ।

( ३ ) एतां धृतिपनुगच्छन्ती " मियेषु स्वेष्टे सुकृतमभियेषु च दुष्कृतम् ।  
विमृश्य ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति सनातनम् " इति मानवी भारत्यप्यवोदाहृत्येव ।

( ४ ) यदि नाम वचनबलेनान्योद्देशेनाकृतयोरपि सुकृतदुष्कृतयोर-  
न्यगामित्वमभ्युपेयते तदा कैव कथा पित्राद्युद्देशेन कृतस्य आदस्य पितृप्रीति-  
करत्वामिति भावः ।

( \* ) एषैव च व्यपस्था पूर्वोक्तपतितदुरितसंचारस्य हेतुः ।

प्लुते अन्यैरभ्युपेयेते इति नातीवाऽभिनिवेष्टव्यम्” इति, इत्येवमास्थीयते तर्ह्यस्त्वयं न्यायः सार्वभौमस्तथापि न नो हानिः ‘यस्य यत्फलमुद्दिश्य’ इत्याद्यनन्तराभिहितन्यायावतारेपि श्राद्धकृत्ये दोषाभावाद् ।

वस्तुतस्तु सम्प्रत्तिसंज्ञक + कर्मनिरूपके बृहदारण्यके “तस्मात्पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुः ( १ ) तस्मादेनमनुशास्ति, स यदेवंविदस्मान्नोकात्प्रैत्यथेभिः प्राणैः सह पुत्रमाविशति, स यद्यनेन किञ्चिदक्षयाऽकृतं भवति तस्मादेनं सर्वस्मात्पुत्रो मुञ्चति तस्मात्पुत्रो नाम, स पुत्रेणैवास्मिन्नोके प्रतितिष्ठति” इत्येवं पितुरेव पुत्ररूपेणावस्थानप्रतिपादनाद् ऐतरेयारण्यके च “सोऽस्यायमितर आत्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः

\* सम्प्रत्तिः—सम्प्रदानम्, येन कर्मणा पिता पुत्रे स्वात्मव्यापारसंप्रदानं करोति तत्कर्म सम्प्रत्तिसंज्ञकम् ।

( १ ) यस्माच्च “त्वं ब्रह्मा त्वं यज्ञस्त्वं लोक” इत्येवमनुशिष्टः पुत्रः पितरमस्मात्लोकात्कर्तव्यताबन्धनतो मोचयति तस्मादनुशिष्टं पुत्रं लोक्य = लोकहितमाहुर्ब्राह्मणाः, अतएव ह्येनं पुत्रमनुशास्ति पिता लोकयोऽयं नः स्यादिति, सः = पिता यदा = यस्मिन् समये, एवंवित् = पुत्रसम्पत्तिकर्तव्यताकृतः, अस्मात्लोकात् प्रैति = म्रियते, अय = तदा, पाभिः = प्रकृतैर्बाह्यनःप्राणैः, पुत्रम् आविशति व्याप्नोति, एतदुक्तं भवति—यस्य पितुरेवमनुशिष्टः पुत्रो भवति सोऽस्मिन्नेव लोके वर्तते पुत्ररूपेण नैव मृतो मन्तव्य इति ॥ इदानीं पुत्रनिर्वचनमाह ( मयादि ) इति, यदि कदाचिद् अनेन = पित्रा, अक्षण्या = कोण-छिन्द्रेणाऽन्तराऽकृतं भवति कर्तव्यं तस्मात् पित्राऽकृताल्लोकपाप्मप्रतिबन्धरूपात् सर्वस्मात् स पुत्रो मुञ्चति = मोचयति तत्सर्वं स्वयमनुतिष्ठन्पूजयित्वा, तस्मात्पूरणेन त्रायते स पितरं यस्मात् तस्मात्पुत्रो नाम इदं तत्पुत्रस्य पुत्रत्वं यत्पितुश्छिद्रं पूरयित्वा त्रायते—स पिता मृतोपि सन्नेवंविधेन पुत्रेणामृत एवास्मिन्लोके भति तिष्ठति, इत्यर्थः ।



प्रति धीयते” इत्येवं स्पष्टमेव पुत्रस्य पितृप्रातिनिध्यवचनाच्च पुत्रानुष्ठितं पितृकृत्यं पित्रैवानुष्ठितमिति (१) नात्र वैय्यधिक-  
रणशङ्कापङ्ककलङ्काङ्कुर इति सर्वं श्वःश्रेयसम् (२) ।

कया च प्रणाड्या पुत्रप्रप्तं धरामरेश्व भुक्तं श्राद्धीयद्रव्यं पितृनुपतिष्ठत इति त्वन्तर्बलीनिदर्शनेन विस्पष्टमुपरिष्ठाद् (श्राद्धकृत्यमीमांसायाम्) उपपादयिष्यत इति तत एव कणेहत्य निरीक्षणीयमित्युदास्यत उदासीनेन,

किं बहुना—

“मोघमन्नं विन्दतेऽप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध  
इत् स तस्य,

नार्यमणं पुण्यति नो सखायं केवलाधी भवति  
केवलादी मं० ६ ।

श. ५८. ८ व. २२ म. १० पञ्चा. ६ व. १० मू. ११०।

(१) एवं च “शास्त्रदशितं फलमनुष्ठातरि” इति न्यायस्वीकारे अपि न सतिरिति भावः ।

(२) इस सब लेख का सार यह है कि कुछ यह नियम नहीं है कि जो कर्म करे सोई उस के फल का भागी होय क्योंकि ऐसे मानने से ऋत्विग् आदि कर किये हुये यह से यजमान को फल का लाभ नहीं होगा किन्तु जो कर्म जिस के उद्देश से विधान किया जाता है उस को उस कर्म का फल होता है यह नियम मानना उचित है इसी से ही जैमिनि पुनिने पुत्र के नाम से किणी हुयी पुत्रेष्टिका तेनस्वित्तादि फलपुत्रनिष्ठ माना है, वास्तव से तो जिस प्रकार वेदादिसच्छास्त्रों में उपदिष्ट है वही श्रद्धेय है कुछ वैदिक अनुष्ठान में तर्क की अपेक्षा नहीं है—इसी लिये ही मदिरापीने वाली रमणी के पति को पतित मानना तथा ब्रह्मोपासक के किये हुये पुण्य औ पापों का ज्ञानी के सेवक औ निन्दकों में संचार मानना तथा पतित के संग भोजन-नादि करने वाले को पतित संघन्धी पाप के फल का भागी मानना, यह वैदिकसिद्धान्त संगत है, यदि जो करे सोई भोगे यह माना जाय तो यह वैदिक सिद्धान्त असङ्गत होगा :

॥ ओ३म् ॥

॥ नमोऽ तर्थाभिणे ॥

उपोद्घात ।

“तत्पुरुषाय विद्महे वक्त्रशृङ्गाय धीमहि तन्नो दन्तिः प्रचोदयाद्”  
सं० यजु० चारण्य० प्र० १० यजु० ३ ।

“एकं विवेकं नुमः”

“धर्मे जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः”  
यजु०

सात्त्विकजन !

पूर्वकाल में हमारे यहां भारत में यह परिपाटी थी कि जब किसी सनातन वैदिकधर्मावलंबी आर्य्य सत्संतान कुलीन जनों को कभी किसी मार्गगत प्रमत्त नास्तिक की अकस्मात् कुत्सित उक्ति से देवात् स्वकीय कार्याऽकार्य्य में चित्त आन्दोलित सा हो जाता था तो वह एकवार ही संस्कृत स्वकीय चित्तभित्ति में उस उक्ति को चित्रित कर सज्जित नहीं कर देते थे किन्तु धर्माऽधर्मरूप अतीन्द्रिय अर्थ को केवल वेदैकमेय जान कर शिष्टपरंपरासंमत श्रुतिप्रतिपादित कर्तव्यजात के आलोचन पूर्वक उस आन्दोलन को निवारण कर,

“येनास्य पितरो गाता येन याताः पितामहाः \* ।  
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन् न रिष्यते” ॥

यजु० य० ३ द्री० १५८

\* अर्थात् जिस श्रौतपार्श्वके अनुसार अपने पिता पितामह धर्मका पालन

इस मानव रव ७ पर निर्भर कर अपने पिता पिता-मह प्रभृति सेवित सत्पथ को ही कल्याणकारी जान कर निःसन्देह वैदिक धर्म के अनुष्ठान में तत्पर होते थे, एवं यदि उन को किसी वेदप्रतिपाद्य अर्थ में भी कभी सन्देह उपस्थित होता था तो भी वह अपनी मनमानी गणना से उस सन्देह का निवारण नहीं करते थे किन्तु,

“अथा यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्याद् ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः युक्ता आयुक्ता आलूक्षा धर्मकामा स्युः यथा ते तत्र वर्तन्त तथा तत्र वर्तन्थाः” ।

यमु० चारुल्लभ शिवाचार्य ११ अध्याय ।

इस वेद के उपदेश को शिरोधार्य कर महात्माओं द्वारा सन्देह का उन्मूलन कर सदाचार में तत्पर होते थे, सो

करते चले आये हैं उसीके अनुसार ही सन्मार्ग पर आरुढ़ होना चाहिये कुछ कृतकों से उस का परित्याग न करे क्योंकि “तेन गच्छन् न रिप्यते” अर्थात् तिस पितृपितामहप्रभृति सेवित मार्ग से धर्म का पालन करता हुआ पुरुष स्वार्थ से भ्रष्ट नहीं होता है ।

\* मनजी का वचन ।

१० हे शिष्य ! यदि तुम को किसी कर्म के अनुष्ठान में ( विचिकित्सा ) संशय हो, अथवा किसी वृत्त=वर्णाश्रमाचार की कर्तव्यता में संदेह हो तो तुम अपने मन से उस संदेह का निवारण मत करना किन्तु वहाँ पर विद्यमान जो ( संमर्शिनः ) सम्यक्विचारशील, तथा ( युक्ताः ) नित्यनैमित्तिक कर्म के अनुष्ठान में तत्पर, तथा ( आयुक्ताः ) विश्वासपूर्वक वैदिक कर्म में निष्ठावाले तथा ( आलूक्षाः ) क्लृप्तपापण तथा क्रोध औ आग्रह से रहित, एवं लाभपूर्णा ख्याति से बिना केवल धर्म की कामनावाले शिष्ट ब्राह्मण हैं वह जिस प्रकार से उस कर्म का अनुष्ठान करें वा जिस आचार का सेवन करें तिस प्रकार ही तुम को अनुष्ठान करना होगा विपरीत नहीं, यह इस का भाव है ।

इस प्राचीन परिपाटी का आजकल ऐसा तिरोधान हुआ है कि शिष्टाचार का अनुसरण करना तो दूर रहा पर जिन कर्तव्यों का वेदादिसिद्धान्त में दृढ शास्त्रीय शंका-समाधानों द्वारा मार्जित कर विस्तृतरूप से प्रतिपादन किया है उस पर भी आधुनिक नवयुवक लोक निर्भर नहीं करते हैं किन्तु असंस्कृत अपने आचमनी\* समान मन में जो जमा उस को मान कर अन्य को अपने पूर्वज गंभीराशयों की भूल बतलाते हुए अपने को उस श्रेणी से अलग होने का परिचय देते हैं बहुत क्या कहें यहां तक आधुनिक अनेक लोक अविवेक के सेवक बने हुए हैं कि—

“मृतानामपि जंतूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारकं,  
गच्छतामिह जंतूनां वृथा पाथेयकल्पनम्†” ।

ऐसे २ चार्वाकधूकों के कुपद्य की गंध से मुग्ध हो कर भारतसौभाग्यकर वैदिक पिण्डदानादि क्रिया को भी तिलाञ्जलि डाल बैठे हैं, भला आप तो वह यमयातना के भाजन बनने के लिये श्रौतस्मार्तकर्म का उल्लङ्घन कर यथेष्टाचरण बने ही हुए हैं परंतु जो सरल आस्तिक सत्संतान वैदिक श्राद्धादि क्रिया के अनुष्ठान में तत्पर हैं उन के प्रति

\* सन्ध्यासमय में आचमन का साधनभूत जो क्षुद्र चमचा है वह आचमनी जाननी ।

† यदि श्राद्धरूप कर्म मृतक जंतुओं की तृप्तिकारक है तो परदेश में गमन करने वाले जो जीवित जंतु हैं उन के लिये मार्ग का खरच देना व्यर्थ है क्योंकि उन के नाम से यहां पर ब्राह्मण भोजन करा देने से वह आप ही तृप्त होजायेंगे, यह भाव है ।

भी (जब जीवते जीव को परदेश में श्राद्ध द्वारा तृप्ति नहीं होती है तो मृतकों की कैसे, तुम्हारे पितरों को कैसे मालूम पड़ा कि हमारे पुत्र ने हमारे लिये श्राद्ध किया है, क्या मरने के अनंतर वह सर्वज्ञ हो जाते हैं, यदि तुम्हारे पितर मर कर पशु वा पक्षी योनि में गये होंगे तो उन के लिये ब्राह्मणों को घास आदि ही देना चाहिये न कि क्षीर पूरी) ऐसे २ आसुर ध्वजनों को सुना कर उन के चित्त को भ्रांत सा कर देते हैं ।

कुछ सरल आस्तिकों के चित्त को भ्रांति युक्त कर देना ही इन अविवेकी प्रच्छन्न चार्वाकों के कुवाक्यों का चरमकृत्य नहीं जानना किंतु यदि इस अविवेक गद की चिकित्सा सद्यः की जायगी तो यहां तक संभावना हो सकती है कि यह अविवेक कहीं दाद औ खुजली की तरह पाद पसार कर—

**‘पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः’**

इस गीता वाक्य को भी सत्य न कर दिखावें अतः इस अनर्थकर अविवेक के निराकरणार्थ तथा सरलआस्तिकों की भ्रान्ति के दूर करने के लिये पितृकृत्यविषयक वैदिकसिद्धान्त निरूपण पर एक अपूर्व पूजित विचार का आरंभ किया जाता है जिस से (श्राद्ध किस कृत्य का नाम है, औ किस प्रकार मृतकों को पहुंचता है, औ कौन पहुंचाने वाला

१ पिण्ड तर्पण आदि पितृ क्रिया के लुप्त होने पर पितर नरक में पतित होते हैं, यदि पितरः इस पद से देवता रूप पितरों का ग्रहण किया जाय तो ‘पतन्ति’ इस पद का अर्थ ‘पातयन्ति’ यह करना, अर्थात्—यदि पितृकृत्य न किया जायगा तो पितर रुष्ट होकर न करने वाले को नरक में गिरा देंगे ।

है औ क्यों करना चाहिये, औ न करने से क्या हानि है )  
इत्यादि विषयों के यथार्थ ज्ञान पूर्वक आस्तिकों की पितृकृत्य  
में रुचि होय औ कुमार्गियों के फंदों से किंनारे हो कर  
सनातन मार्ग पर आरूढ़ हो कर स्वर्ग तथा अपवर्ग के  
भागी होंय ।

“देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्” यजु० वे० भा० ११ अ०

( उपोद्घातस्तमातः )

ॐ

नमोऽर्च्यार्चिणे

## श्राद्धकृत्यमीमांसा ।

“यद्वक्त्राम्बुजनिःसृता सललिता श्रौती सती भारती,  
पीता कर्ण पुटै हतं वि तनुते श्रोतायने सन्मतिम्,  
आम्नाता धृतिमस्तमेयविषयां निष्ठां नि षत्ते हृदि,  
चन्देहं तमशेषदोषविधुरं श्रीदैशिकं नानकम्”

प्रथम पूर्वोक्त पांचविषयों में से आदि के तीन० विषयों का निरूपण किया जाता है, तहां—

“अथैतन्मनुः† श्राद्धशब्दं कर्म प्रोवाच प्रजानिः-  
श्रेयसार्थं तत्र पितरो देवता ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थं  
मासि मासि कार्यमपरपक्षस्यापराहः श्रेयान्” ।

\* श्राद्ध किस कृत्य का नाम है, और कैसे पहुंचता है और कौन पहुंचाने वाला है, इन तीनों विषयों का ।

† “श्राद्धमिति शब्दो वाचको यस्य तत्कर्म श्राद्धशब्दम्” इति मदनपरिजातः  
अर्थात्—मन्त्र के बल्ल्याण के लिये वेदार्थ ज्ञाता मनु जी ने एक ऐसा कर्म-  
व्यपदेश किया है जिस का नाम श्राद्ध है, तहां जैसे देवयज्ञ में इन्द्रादि देवता  
पूजनीय होते हैं और आहवनीय अग्नि उन की तृप्ति के लिये होम का आधार  
होता है, तैसे इस पितृयज्ञ में पूजनीय देवता तो पितर हैं, और उन की तृप्ति  
के लिये होमाधार अग्नि की जगह ब्राह्मणों का मुख है, यह कर्म मास २ में  
करना चाहिये परन्तु कृष्णपक्ष का अपराह काल इस क्रिया के अनुष्ठान में  
श्रेष्ठ है, यह सब आगे स्पष्ट होगा ।

इस आपस्तम्बीय मनुसंमत वचन से मृतकपितरों के निःश्रेयस के उद्देश से पितृदेवताओं के यजनार्थ जो होम पिण्डदानादि ब्राह्मण भोजन रूप सत्क्रिया है वह श्राद्धपद का वाच्य जानना ।

यद्यपि श्रद्धायुक्त यावत्कर्म का ही श्राद्ध शब्द से बोध होता है तथापि 'अकालमृत्यु' \* इस पद की तरह श्राद्धशब्द को पारिभाषिक मान कर शास्त्रीय पितृकृत्य ही श्राद्धशब्द का अर्थ जानना, इसी से ही कोशकारों ने—

‘श्राद्धं तत्कर्म शास्त्रतः’

यह कहा है ।

ब्रह्मपुराण में भी—

“देशे काले च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत्,  
पितृनुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम्”

इस वाक्य से शास्त्रीय पितृकृत्य को ही श्राद्ध कहा है ।

अर्थात्—जैसे परमात्मा की सृष्टि में देवलोक आदि अन्य लोक हैं औ उन के अधिष्ठाता इन्द्रादि देव हैं तैसे—

\* जैसे (अकालमृत्यु) इस पद का अर्थ यह नहीं है कि बिना काल से मरजाना क्योंकि ऐसे मानने से “नाकाले म्रियते जन्तुः प्राप्ते काले न जीवति” इत्यादि वचन जो बिना काल के मरण वा निषेय करते हैं वह असंगत हो जायेंगे, किन्तु पशु-पक्षी मकर मृग शृङ्गी दंष्ट्री नखी-पतन-अनशन-वज्र-अग्नि-विष-बन्धन-जल-शस्त्र आदि जन्य जो मरण है उस का नाम अकालमृत्यु है, क्योंकि इन सब मरणों में मरणकाल के समय जो स्नान-भूमिशयन दीपदानादि सामग्री होती है वह प्राणी को नहीं मिलती है, नैसं श्रद्धायुक्त कर्ममात्र का नाम श्राद्ध नहीं है किन्तु पितृकृत्य वाही है ।



“कर्मणा पितृलोकः” बृहदारण्यक ।

“दक्षिणाप्रवणो वै पितृलोकः” मत्तपथ—१३।८।३।७

इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे एक पितृलोक भी स्वतन्त्र लोक है जिस के अधिष्ठाता अर्य्यमा तथा अग्निष्वात आदि पितृदेव हैं, यह जो अर्य्यमादि पितृदेव हैं वही इस श्राद्ध-कर्म में पूजनीयदेवता हैं, औ इन्हींकोही वेद में देवगन्धर्वों से शतगुणित अधिक आनन्द का भागी कहा है, औ मरन से अनन्तर पुरुष किस योनि में गया है औ कौन देश में है औ उस के नाम पर उस के वंशीय पुरुषों ने क्या कृत्य किया है इस के वह समालोचक हैं, औ वही पितृदेव वैदिक मंत्रों से आहूत हुये मृतपितरों के वंशीय पुरुषों कर किये हुये श्राद्ध कर्म में उपस्थित होते हैं और श्रद्धाप्रदत्त आहुति तथा भक्ष्य भोज्य आदि के सारांश को वासनारूप से ग्रहण कर श्राद्धकर्ता के प्रति प्रसन्नता पूर्वक आशीर्वाद देकर वैदिक मंत्रों से विसर्जित हुये मृतपुरुषों को यथायोग्य सुख का भागी करते हैं, ( यह सब आगे सप्रमाण स्पष्ट होगा ) यद्यपि उन पितरों का स्वरूप हम चर्मचक्षु से

---

\* सर्वोच्च, सार्वभौम, चक्रवर्ती, निष्पण्टकराज्यभोक्ता, निखिलकलाविशिष्ट जो अतिबलिष्ठ सम्राट् है उस को जो आनन्द होता है ( जिस को मनुष्यानन्द की सीमा कहा जाता है ) इस मनुष्यानन्द से शतगुणित अधिक आनन्द मनुष्यगन्धर्वों को है, औ इन से शतगुणित अधिक आनन्द देवगन्धर्वों को है औ इन से शतगुणित अधिक आनन्द पितृलोकनिवासी पितरों को है, यह सब तैत्तिरीयारण्यक तथा बृहदारण्यक में स्पष्ट है ।

१. वह सब वैदिक मंत्र सप्रमाण आगे कहे जायेंगे ।

अवलोकन नहीं कर सकते हैं तथापि शास्त्रीय पुरुष के मन में पितरों का अदृश्य हो कर आना कुछ असंभव नहीं है क्योंकि योगशास्त्र में यह विषय स्पष्ट है कि यदि कायरूप में पुरुष संयम करे तो वह पुरुष अन्य कर अदृश्य हो कर यावद् व्यवहार कर सकता है, जब पुरुषों में इस सामर्थ्य-विशेष का संभव है तो “पितृणामर्थ्यमाचास्मि” इस भगवद् वाक्यसिद्ध ईश्वर रूप पितरों में इस सामर्थ्य का असंभव कैसे हो सकता है ।

औ (किस प्रकार यह पितर श्राद्धीय पदार्थों के सारांश को ग्रहण करते हैं ) यह भी कुछ हमारे लिये आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि जब हम पशु पक्षि कीटों में परमेश्वर प्रदत्त अलौकिक सामर्थ्य को प्रत्यक्ष देख रहे हैं तो पितरों प्रति प्रदत्त अलौकिक सामर्थ्य हम को कैसे आश्चर्यजनक होगा ।

अर्थात् जैसे परमात्मप्रदत्त अलौकिक शक्ति विशेष से हस्ती कपित्थ फल को भक्षण कर उस के अन्तर्गत सारांश को ग्रहण कर फिर लीद के संग यथावस्थित उस फल को निकास देता है, औ जैसे मधुमक्खियां पुष्पों से मकरन्द ग्रहण कर मधु रचना करती हुई पुष्प के किसी अंश को हास न कर उस के सारांश को ग्रहण कर लेती हैं जैसे वा जलौका (जोंक) मिश्रित रक्त में से विकृत रक्त रूप एकांश को ग्रहण कर लेती है जैसे वा कमल के किसी

१ योगदर्शन के तृतीय विभूतिपाद के २१ वें सूत्र में यह स्पष्ट है ।

२ अ० १० श्लो० २९—पितृलोकनिवासी जो अर्घ्यमा नामक पितर है वह मेरा स्वरूप है यह गीतावाक्य का अर्थ है ।

३ पूर्वोक्त अर्थ को स्पष्ट करते हैं “अर्थात्” इत्यादि से ।

अंश को भी न घटाता हुआ भ्रमर कमल गर्भ केशर मकरंद को ग्रहण करलेता है, जैसे वा जल मिश्रित दुग्ध में से हंस जल को पृथक् कर देता है, तैसे परमात्मप्रदत्त अलौकिक शक्तिविशेष से पितर देवता भी श्राद्धीय पदार्थों के सारांश का ग्रहण कर लेते हैं ।

यहां पर इतना विशेष यह भी जान लेना कि जैसे देवदत्त आदि शब्दों को के न केवल शरीर मात्र ही कहा जाता है औ न केवल आत्मामात्र किन्तु शरीरविशिष्ट आत्मा ही कहा जाता है, तैसे श्राद्धकर्म में संप्रदानभूत जो पितृ-पितामह-प्रपितामह-शब्द उच्चारण किये जाते हैं वह भी न केवल मृतपितरों के वाचक हैं न पितर देवताओं के वाचक हैं, किन्तु वसु आदिक अधिष्ठातृ देवतारूप पितरों के विशिष्ट जो मृत पितृ आदि हैं उन के वाचक हैं ।

इसी प्रकार जट लोहे में भी चुबक के सन्निधान से अलौकिक शक्ति तथा अंगुलि के स्पर्श करने से लज्जावती लता में संकुचित होने की शक्ति भी जान लेनी, यदि पदार्थों की विचित्र शक्तियों का निरूपण किया जाय तो एक वृहत्कथा ही हो जायगी, इस से इतने में ही सन्तुष्ट होवो, यदि अंग्रेजी दां हो तो यूरोपियन दारविनियन की विचार देखो जिस में सागरस्थ जन्तुओं की अलौकिक शक्तियों का निरूपण है ।

२ तहां इतना विशेष है कि मृतपितृविशिष्ट वसुदेवता तो पितृपद का वाच्य है औ मृतपितामहविशिष्ट रुद्र देवता पितामह पद का वाच्य है औ मृतप्रपितामहविशिष्ट अदिनिमृत ( आदित्य ) देवता प्रपितामहपद का वाच्य है, इस अभिप्राय से ही मनु जी ने "वसुन् वदन्ति तु पितॄन् रुद्राँश्च पितामहान्, प्रपितामहौस्तथादित्याब्धुतिरेषा संनातनी" अ ३ श्रृं० २८४ इस वाक्य से वसु रुद्र आदित्य, इन तीनों को पितृ पितामह प्रपितामह नाम से निर्देश किया है ।

एवंच जैसे गर्भिणी अबला किसी अन्य पुरुष कर प्रदत्त गर्भ-पोषणार्थ अन्नदि को भक्षण कर स्वतः तृप्त हुई अपने उदर गत गर्भको भी तृप्त करती है औ गर्भ पोषणो-पयुक्त अन्न देने वाले को भी प्रत्युपकार रूप फल से संयुक्त करती है तैसे श्राद्धदेव जो वस्वादि पितर हैं वह श्राद्ध कर के तृप्त हुए स्वसंगत पितरों को भी तृप्त करते हैं औ श्राद्ध कर्ता को भी स्वर्गादि फल से संयुक्त करते हैं, इस अभि-प्राय से ही ।

“देवान् वै पितॄन् प्रीतान्, मनुष्याः पितरोऽनु-  
प्रीयन्ते, \* तिस्र आहुतीर्जुहोति, त्रिर्निदधाति,  
षट् संपद्यन्ते ” ४

अथ यजुर्वेदप्रश्न ४८० । यथा १ यजु-१ ।

इस वेदवाक्य ने पितरदेवताओं के अनन्तर मृतमनुष्य पितरों की तृप्ति कही है,

योगीयाज्ञवल्क्य मुनि जी ने आचाराध्याय में भी  
“वसुरुद्राऽदितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः,

प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितॄन् श्राद्धेन तर्पिताः २६९

\* देवतारूप पितरों के तृप्त होने से अनन्तर मनुष्यरूप पितर भी तृप्त हो जाते हैं, इसी से ही प्रथम देवतारूप पितरों के अर्थ तीन आहुति करनी चाहिये औ फिर मृत मनुष्यरूप पितरों के अर्थ तीन पिण्ड देने चाहियें, इस प्रकार षट् ६ संपन्न होते हैं, यह इस श्रुति का अर्थ है ।

१ वसु तथा रुद्र एवं अदितिसुत यह तीनों पितर जो श्राद्ध के देवता हैं वह श्राद्ध कर के तृप्त हुये मनुष्यों के पितरों को भी, तृप्त करते हैं औ श्राद्ध-कर्ता के प्रति भी आयु, मजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, यथायोग्य सुख प्रदान करते हैं, यह याज्ञवल्क्यमुनि जी के वचन का परमार्थ है ।

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च  
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः” २७०

इन वाक्यों से यही दृढ़ किया है औ भीष्मपितामह  
जी के प्रति शंतनु जी ने भी—

“आप्यायिताश्रते सर्वे पुनराप्याययन्ति”

यही समाधान दिया है<sup>१</sup> इतना विशेष यहां पर और  
भी जान लेना कि जो मृतपुरुष सामर्थ्य से विहीन हुए  
श्राद्ध देश में आगमन नहीं करसकते हैं उन के प्रति मंत्रों  
के बल से तथा पितृदेवताओं के अलौकिक पुरुषार्थ से उसी  
स्थान में ही फल प्राप्त हो जाता है ।

अब यह सब जिस प्रकार पुराणों में शंका समाधान  
द्वारा विस्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया है सोई प्रकार संक्षिप्त  
रूप से मैं प्रदर्शन करता हूं, तहां प्रथम जो पुराणों में  
श्राद्धविषयक शंकापर वाक्य हैं उन का उपन्यास किया  
जाता है

“ कथं कव्यानि दत्तानि हव्यानि च जनेरिह,  
गच्छन्ति पितृलोकं वा प्रापकः कोऽत्र गद्यते”

पाद ४, मा ४ ।

अर्थात्—जनों कर के दिया हुआ हव्य कव्य पितृ-  
लोक को कैसे प्राप्त होता है औ कौन पहुंचाने वाला है,

१ यह सब शिरपुराणकी धर्म संहिताके श्राद्ध कृत्य के ६२ अ०में स्पष्ट है ।

२ पितरों के उद्देश से जो अन्न है वह कव्य है, देवताओं के प्रति जो  
देय भन्न है वह हव्य जानना ।

“तृप्तये जायते पुंसो भुक्तमन्येन चेत्ततः,  
दद्यात् श्राद्धं श्रद्धयाऽन्नं न वहेयुः प्रवासिनः”  
वि. पु. ।

अर्थात्—यदि अन्य के भोजन से अन्य की तृप्ति होती है तो परदेश में गये हुए पुरुष के निमित्त भी श्राद्ध करने से उस की तृप्ति होने से क्यों वह मार्ग में अन्न का भार उठाते हैं ।

“मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धमाप्यायते ततः,  
निर्वाणस्य प्रदीपस्य तैलं संवर्द्धयेच्छिखाम्”  
श्राद्ध ।

अर्थात्—यदि मृतपुरुष की भी श्राद्ध से तृप्ति होय तो बुते हुए दीपक की शिखा को भी तैल बढ़ा सकता है ।

“किमर्थं क्रियते श्राद्धममावास्यादिषु द्विजैः,  
मृताश्च पुरुषा विप्र स्वकर्मजनितांगतिं,  
गच्छन्ति ते कथं तस्य सुतस्याश्रममाप्नुयुः”  
श्रा. नागरखंड

अर्थात्—अमावास्यादि तिथियों में श्राद्ध करने का क्या काम है क्योंकि अपने २ कर्मों के अनुसार भिन्न २ योनि को प्राप्त हुये मृतपुरुषों का पुत्र के गृह में श्राद्ध काल में गमन करना असंभव है ।

इदानीं जो इन आक्षेपों के परिहार पर वाक्य हैं सो निरूपण किये जाते हैं ।

“नामगोत्रं तु पितृणां प्रापकं हव्यकव्ययोः,  
श्राद्धस्य मंत्रास्तद्वच्चोपलभ्यानि भक्तितः”

अर्थात्—पितरों का नाम तथा गोत्र एवं श्राद्ध मंत्र यह सब पितरों के प्रति हव्य तथा कव्य के प्रापक हैं परन्तु भक्तिपूर्वक इस को जानना चाहिये ।

“एते श्राद्धं सदा भुक्त्वा पितॄन् सन्तर्पयन्त्युत ।  
यत्र कचन धर्मज्ञा वर्तमानान्हि योगतः ॥”

विष्णुसौतम ।

अर्थात्—वसु आदिक जो पितरदेव हैं वह श्राद्धभोजन कर आप तृप्त हुये मृतपुरुषों को तृप्त कर देते हैं चाहे वह किसी योनि में हों क्योंकि वह धर्मज्ञ पितर योगबल से सब के ज्ञाता हैं ।

विस्तर के भय से अन्य वचनों का उपन्यास नहीं किया गया है, जिसे इच्छा होय वह वायवीय वा वाराह के श्राद्धकल्प को देखे० ।

जो कि यहां पर एक यह क्षुद्र शंका उत्थित होती है

१ वह सब मन्त्र आगे कहे जायगे ।

\* यद्यपि निग्विलपुराणों में ही श्राद्धप्रकरण है तथापि अग्निपुराण के १६३ अध्याय में औ मार्कण्डेयपुराण के १०-३१-३२-३३ अध्यायों में औ वृहन्नारदीय के १६ अ० में, औ वराहपुराण के १३ १४ अ० में औ मत्स्यपुराण के १६-१७ १८ १९-२०-२१-२२ अ० में औ कूर्म पुराण के २०-२१-२२ अ० में, औ लिङ्गपुराण के ४५ अ० में यह प्रकरण विस्तृत है, अतः जिन को विशेष रुचि होय वह वहां पर दृष्टिगत करें ।

यदि श्राद्धविषयक निखिल अन्तुष्टेय के जानने की रुचि है तो चतुर्वर्ग चिन्तामणि के श्राद्धखण्ड को देखो जिस के श्राद्ध के निरूपण में ही एक हजार सात सौ सतरह १७१७ पत्र है, स्वामी जी ने तो केवल ( श्राद्धकर्म वैदिक है औ अवश्य करना चाहिये) इस लिये यह नूतन आरम्भ किया है क्योंकि इस प्रकार का प्रकरण अभी तक किसी ने रचा नहीं है ।

कि ( मृत पुरुषों को स्वकीय पुण्य पाप रूप कर्म के वै-  
चित्र्य से भिन्न २ योनियों की प्राप्ति होने से पशु पक्षी  
आदि योनि को प्राप्त मृतपुरुष मनुष्य भोजन से कैसे तृप्त  
होंगे क्योंकि जिस जाति में जो उत्पन्न होता है उस को  
उसी जाति का भोग ही तृप्ति कर होता है अन्य जाति का  
नहीं ) इस का समाधान देवल मुनि ने

“ देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुयोगतः

तस्यान्नमृतं भूत्वा देवत्वेऽप्यनु गच्छति  
गान्धर्वे भोग्यरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेद्  
श्राद्धान्नं वायु रूपेण नागत्वेऽप्यनु गच्छति  
पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथामिषम्  
दानवत्वे तथा मांसं प्रेतत्वे रुधिरोदकम्  
मनुष्यत्वेऽन्नपानादि नानाभोगरसो भवेद् ”

यह दिया है, अर्थात्—जिस जाति में वह उत्पन्न होता  
है उस जाति का ही भोग उस को पितर देवता पहुंचा देते हैं,

औ जो पितर उत्कृष्ट योनि की प्राप्ति से श्राद्ध देश में  
आगमन की शक्तिवाले हैं वह निमन्त्रित ब्राह्मणों के शरीर  
में वायु रूप से प्रविष्ट हो कर श्राद्ध देश में उपस्थित हो  
तृप्ति को प्राप्त हो जाते हैं ।

१ यदि नर शुभकर्मानुसार से मर कर देवता बनेगा तो उस को वह  
श्राद्धान्न अमृतरूप से प्राप्त होता है, एवं गान्धर्वजाति में भोग्यरूप से, पशु-  
योनि में तृणरूप से, नागयोनि में वायु रूप से, यक्षयोनि में मिदिरारूप से,  
राक्षसयोनि में आमिषरूप से, दानवयोनि में मांसरूप से, प्रेतयोनि में रुधिर-  
रूप से, मनुष्ययोनि में अन्नपानादिरूप से, वह श्राद्धान्न प्राप्त होता है ।



इस आशय से ही मनुभगवान् जीने अ० ३ में  
 “निमन्त्रितान् हि पितर उप तिष्ठन्ति तान् द्विजान्,  
 वायुवच्चानुगच्छन्ति तथाऽऽसीनानुपासते” ॥१८४॥

इस वाक्य से निमन्त्रित ब्राह्मणों के शरीर में अदृश्य  
 वायुरूप से पितरों का प्रवेश कहा है ।

अतएव जब पुष्कर यात्रा में वियोगवापी के समीप  
 रामजी ने श्राद्ध किया था तब जानकी जी ने निमन्त्रित  
 ब्राह्मणों के शरीरों में दशरथ आदि को देख कर उन से  
 लज्जा कर अन्यत्र गमन कर अपने को छिपा लिया था ।

इस प्रकार श्रुति-स्मृति-युक्ति तथा पुराणों द्वारा

( श्राद्ध किस कृत्य का नाम है, ओ कैसे मृतकों को  
 पहुंचता है, ओ कोन पहुंचाने वाला है, ) इन विषयों का  
 निरूपण किया, इदानीं, ( क्यों यह पितृकृत्य करना चाहिये )  
 इस के समाधानार्थ तथा जो पुरुष यह कहते हैं कि ( वेद  
 में पितरों के निमित्त श्राद्ध का विधान नहीं है, हे तो जीवत्  
 पितरों के लिये ही है कुछ मृतक पितरों के निमित्त नहीं )  
 इस संदेह के उच्छेदनार्थ श्राद्धविषयक वेदिक प्रमाणों का  
 उपन्यास किया जाता है ।

तहां—“विधिर्विधेयः तर्कश्च वेदः” कां० २० कं० ६, सू० ५

इस पारस्कर सूत्र से विधि, मंत्र, अर्थवाद, भेद से  
 वेद को<sup>१</sup> तीन प्रकार का होने से प्रथम मंत्ररूप वेद का उप-  
 न्यास किया जाता है ।

१ यह सब षड्पुराण के पातालखण्ड में स्पष्ट है ।

२ यद्यपि विधि, मंत्र, नामधेय, निषेध, अर्थवाद, इन भेदों से मीमांसक

\* नमो हिरण्यवाहवे हिरण्यवर्णाय हिरण्यरूपाय  
हिरण्यपतयेऽम्बिकापतये उमापतये पशुपतये नमो नमः

छ यजु तैषि आरण्य-१० प्र० १८ यजु० म १

‡ इदं पितृभ्यो नमोऽस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः  
ये पार्थिवे रजस्यानिपत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विश्वे ॥

यजुषे षष्ठक ७ य-या १४ गै१७ मण्डल १०

यजुषाक १ मूल १५—मन्त्र १

शुक्लयजुषेद यजुषाक १८ मन्त्र ६८

छ यजुषेद-काण्ड १ प्रपाठक ६ यजुषाक १२ मन्त्र ८

अन्वयार्थः—ये (पूर्वासः) पूर्वे पितरः (ईयुः) स्वर्गे प्राप्ताः,  
ये च (उपरासः) उपरतव्यापाराः कृतकृत्याः सन्तः परं प्राप्ताः,  
यद्वा ये (पूर्वासः) यजमानोत्पत्तेः पूर्वमेवोत्पन्ना ज्येष्ठभ्रातृपि-  
तामहादयः, ये च (उपरासः) यजमानजन्मन उपर्युत्पन्ना

लोक वेद को पांच प्रकार का मानते हैं तीन प्रकार का नहीं, तथापि विधिपद  
से निषेध का औ तर्कश्च=इस 'च' पद से नामधेय का ग्रहण कर यहां पर  
भी पांच भेद जान लेने ।

तहां साक्षात् जो विधायक वा निषेधक ब्राह्मणवाक्य हैं उन का नाम  
विधि-निषेध रूप वेद है, औ ब्राह्मणवाक्यों कर जिनों का किसी कर्म में  
विनियोग किया जाता है वह मंत्ररूप वेद है, मंशंता तथा निन्दा द्वारा जो  
विहित तथा निषिद्ध में प्रवृत्ति निवृत्ति कराने वाला वाक्य है वह अर्थवाद  
रूप वेद है, जो किसी पदार्थ की सप्तावाधन करने वाले वाक्य हैं वह नाम-  
धेय हैं ।

\* तहां निराकारमात्र ही वेद प्रतिपाद्य है, इस दुराशय को शान्त करते  
हुये प्रथम वेदांक्त नमस्कारात्मकमङ्गल का उपन्यास करते हैं "नमो हिरण्यवा-  
हवे" इति ।

‡ प्रथम जिन मंत्रों का लिङ्गद्वारा श्राद्धविषय में विनियोग है वह मन्त्र  
उपन्यस्त करते हैं, 'इदं पितृभ्यः' इति, यह मन्त्र श्राद्धकाल में आहूत पितरों  
के प्रति नमस्कार करने में विनियुक्त है ।

कनिष्ठभ्रातृस्वपुत्रादयः ( ईयु. ) पितृलोकं प्राप्ताः, येष्यन्ये ( पार्थिवेरजसि ) पृथिवीसंवन्धिनि रजोगुणकार्येऽस्मिन् पितृयज्ञारख्येकर्मणि ( आनिपत्ताः ) हविः स्वीकर्तुमागत्योपविष्टाः, येवा ( सुवृजनासु ) धनसमृद्ध्या श्राद्धादिकर्मपरासु ( विश्व ) बन्धुरूपासु प्रजासु ( नूनं ) निश्चयेन ( आनिपत्ताः ) श्राद्धादिस्वीकारायागत्योपविष्टाः, तेभ्यः सर्वेभ्यः पितृभ्यो ( अद्य ) अस्मिन् पितृयज्ञारख्ये कर्मणि ( नमोऽस्तु ) अयमाहुतिप्रदानपूर्वको नमस्कारो भवतु ।

भाषा—( ये पूर्वास्तः ) जो हम से पूर्व होने वाले ज्येष्ठ-भ्राता पिता आदि पितर औ जो ( उपरास्तः ) हम से पश्चात् होने वाले कनिष्ठभ्राता आदि ( ईयुः ) मर कर पितृलोक को प्राप्त भये हैं, औ जो ( पार्थिवेरजसि ) पृथिवी संवन्धिरजोगुणयुक्त इस पितृयज्ञरूप कर्म में ( आनिपत्ताः ) अदृश्यरूप से हविग्रहण करने को उपस्थित हुये हैं, औ जो ( सुवृजनासु विश्व ) श्राद्धकर्म में निष्ठावाले बन्धुवर्गों में ( नूनं ) निश्चय कर ( आनिपत्ताः ) श्राद्ध के स्वीकारार्थ उपस्थित हुये हैं, तिन सर्व पितरों के प्रति ( अद्य ) इस आरब्ध पितृयज्ञकर्म में आहुति प्रदानपूर्वक मेरी नमस्कार होय ।

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः । अत्ताहवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधात नः , ११ मं—

अ० य० ६ य० १८ मं १० अ० १ सू० १५ अ० ७  
अ० य० ५० १८ मं ५८, अ० य० को १ य० ६ य० ११ मं ५

१ “वृज्यते = परित्यज्यते दारिद्र्यमनेनेति वृजन धन तत् शोभनं यामां ताः वृजनाः, तादृशीषु” इति सायणः ।

अन्वयार्थः—हे ! ( अग्निष्वाताः ) अग्निनाऽऽस्वादित  
वा अग्निष्वात्तनामानः पितरः, यूयं ( एह ) अस्मिन् पितृ-  
यज्ञाख्ये कर्मणि आगच्छत, आगत्य च ( सुप्रणीतयः )  
अभिपूजितप्रणयनाः सन्तः (सदः सदः) स्वस्वस्थानं (सदत)  
यथेष्टमुपविशत, उपविश्य च ( वर्हिषु ) कुशेषु स्थापितानि-  
( प्रयतानि ) शुचीनि हवींषि ( अत्ता ) भक्षयत, अथ च  
सर्वैः वीरैः पुत्रैरुपेतं ( रयिं ) धनं च ( नः ) अस्मभ्यं  
( दधात ) दत्त,

भाषा—हे ! ( अग्निष्वाताः ) अग्नि में दग्ध होने से  
अग्निकर आस्वादित, वा अग्निष्वात्तनामक पितरो ! आप  
(एहगच्छत) इस पितृयज्ञरूप में आगमन करो, औ आकर  
(सुप्रणीतयः) पूजा को प्राप्त हुये (सदःसदः) अपने २ स्थान  
में (सदत) यथा—काम निवास करो, फिर (वर्हिषु) कुशों के  
उपर स्थापित जो (प्रयतानिहवींषि) पवित्र हविरूप भोजन  
तिस को आप ( अत्ता ) भक्षण करो (अथ) पुनः ( सर्ववीरं  
रयिम् ) सर्ववीरपुत्रों के सहित धन को ( नः ) हमारे प्रति  
( दधात ) प्रदान करो ।

आच्याजानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे,  
मा हिंसिष्ट पितरः केनचिन्नो यद्व आगः पुरुषता  
कराम, मं ६

वे. घ. १ व. १८ म १. पठ. १ सू. ११ पठ ७  
ग. घ. घ. १८ म ११

अन्वयार्थः—हे विश्वे सर्वे पितरः, यूयं ( जानुआच्य )

१ यह वन्न पितरदेवताओं के आवाहन तथा उपवेशन में विनियुक्त है,  
यह सब आगे पिण्डपितृयज्ञमीमांसा में स्पष्ट होगा ।

वामजानु भूमौ पातयित्वा ( दक्षिणतो निषद्य ) दक्षिणपार्श्वे  
उपविश्य इममस्मदीयं यज्ञम् ( अभिशृणीत ) साधुरयं यज्ञ  
इत्येवमभिष्टुत अपि च ( वः ) युष्माकं, यत्किञ्चिद् ( आगः )  
कर्मवैगुण्यजनितमपराधम् ( पुरुषता ) मनुष्यत्वेन हेतुना  
( कराम ) वयं कृतवन्तः हे पितरः तेनकेनचिदपराधेन ( नः )  
अस्मान् मा ( हिंसिष्ट ) वधिष्ट ।

हे ( विश्वे ) निखिल पितरो ! आप ( जानुआच्य )  
वामजानु को भूमि पर निपात कर ( दक्षिणतः निषद्य ) इस  
अग्नि से दक्षिण की ओर स्थित हो कर ( इमं यज्ञम् ) इस  
हमारे यज्ञ को ( अभिशृणीत ) स्तवन कीजिये, ओ ( पुरुषता )  
चाञ्चल्यस्वभाव रूप मनुष्यत्व से, आप का ( यद् आगः )  
जो कुछ कर्मवैगुण्ययुक्त अपराध ( कराम ) किया हो तो  
तिस किसी अपराध से ( नः ) हम को ( मा हिंसिष्ट ) हिंसन  
मत करो ।

त्वमग्नि \* ईडितो जातवेदोऽवाङ्मह्व्यानि सुरभीणि  
कृत्वा, प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव  
प्रयता हवीषि,

य. प. १. ४. १८ म. १० प. १८. १५ प. ० म. १९

य. प. १८. म. १८. १५ प. १८. १९ म. १९

अन्वयार्थः—हे अग्ने ! त्वमस्माभिः ( ईडितः ) स्तुतः  
हव्यानि अस्मदीयानि सुगन्धीनि कृत्वा ( अवाद् ) अवा-  
क्षीत् प्राप्तवानसि ऊङ्महा च ( स्वधया ) पितृमंत्रेण पितृभ्यः

\* सामवेदीयमंत्रब्राह्मण के हि० प्रपा० तृ० खण्ड में तो “अभूओ दूतो  
हविषो जातवेदा अवाङ्मह्व्यानि सुरभीणि कृत्वा, प्रादात् पितृभ्यः स्वधया  
तेऽक्षन् प्रजानन्ने पुनरोहि योनिम्” १५ मं, इस प्रकार का पाठ है ।

( प्रादाः ) दत्तवानसि, ते च पितरस्तद् हविः ( अक्षन् ) भक्षितवन्तः हे जातवेदस्त्वमपि ( प्रयता ) पवित्राणि हवींषि ( अद्धि ) भक्षय ।

भाषा—हे अग्ने हमकर (ईडितः) स्तुत हुये (त्वं) आप (हव्या-  
निसुरभीणि कृत्वा अवाङ् ) हमारे दीयेहुये हव्य को सुगन्धित  
कर हवन द्वारा स्वीकार किया, औ स्वीकार कर फिर (स्वधया)  
पितृप्रिय स्वधा इस मंत्र से (पितृभ्यः प्रादाः) हमारे पितरों  
के प्रति प्रदान किया है अतः आप<sup>उत्ता</sup> कर प्रदान किया हुआ  
जो हवि है उस हवि को ( ते ) हमारे पितर ( अक्षन् )  
भक्षण करते हैं, हे ( जातवेदः ) दिव्यप्रकाशस्वरूप अग्ने  
( त्वम् ) आप भी ( प्रयता हवींषि ) इन शुद्ध हवियों को  
( अद्धि ) भक्षणकरो ।

येऽग्निदग्धा\* येऽनग्निदग्धा मध्येदिवःस्वधया  
मादयन्ते, तेभिः स्वराडससुनीतिमेतां यथावशं तन्वं +  
कल्पयस्व, मं० १४

अ० य० ६ व० १६ मण्ड० १० अ० १ सू० १५ अ० ०  
य० य० य० १६—मं० ६०—

अन्वयार्थः—ये ( अग्निदग्धाः ) श्मशानं प्राप्ताः ये च  
( अनग्निदग्धाः ) श्मशानकर्म न प्राप्ता ये च ( दिवो )  
द्युलोकस्य मध्ये स्वधया (मादयन्ते) तृप्ताश्चरन्ति, हे (स्वराट्)  
दीप्यमान अग्ने ( तैः पितृभिः ) ते भ्यः पितृभ्यः ( असुनी-  
तिम् ) प्राणयुक्ताम् ( एताम् ) भक्षण योग्यां तनू ( यथा  
वशं ) यथा कामं त्वं कल्पयस्व ।

\* यहाँ पर जो अग्निदग्धपद से जीवित पितरों का ग्रहण करते हैं उन के  
प्रति तो “ ब्रह्मापि तं नरं न रज्जपति ” यह ही कहना पड़ेगा ।

+ यजुर्वेद में (कल्पयाति) यह पाठ है ।

भापा—हे स्वराट्=दीप्यमान अग्ने ! ( ये अग्निदग्धाः ) जो हमारे पितर अग्नि में दग्ध हुवे श्मशान संस्कार को प्राप्त हुवे हैं ओ ( येऽग्निदग्धाः ) जो श्मशान संस्कार को नहीं प्राप्त हुवे हैं ओ जो ( दिवोमध्ये ) अन्तरिक्ष लोक में वा स्वर्ग लोक में स्वधामंत्र संस्कृत अन्न की प्राप्ति से (मायन्ते) तृप्त होकर विचर रहे हैं ( तैः पितृभिः ) तिन पितरों के प्रति ( असुनीर्ति ) प्राण युक्त ( एताम् ) हवि भक्षण के योग्यता वाली ( तन् ) देह की कल्पना करो जिस से ( यथा कामम् ) यथेष्ट यहां आकर हवि भक्षण करें ।

ये निखाता ये परीप्ता ये दग्धा येचोद्धिता,  
सर्वास्तानन्न आवह पितृन् हविषे अत्तवे ॥

अथर्व-काण्ड १८ अथा० २२ अतु० २ अ० २४

भापा—( येनिखाताः ) जो हमारे पितर भूमि में गाड़े गये हैं ओ ( ये परीप्ताः ) नदी में बहाये गये हैं ( ये दग्धा जो अग्नि में जलाये गये हैं ( ये च उद्धिताः ) जो पृथ्वी में किसी कारण से गाड़े जाने पर फिर निकाल कर जलाये गये हैं हे अग्ने ! ( तान् पितृन् ) तिन सबपितरों को ( हविषः अत्तवे ) हवि भक्षण के अर्थ यहां ( आवह ) प्राप्त कर ।

इसी प्रकार अथर्व वेद के १८ वें काण्ड में ३४ प्रपाठ-कान्तर्गत चतुर्थ अनुवाक में—

“धारते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः”

१ अर्थात् श्राद्ध देश में आगमन शक्ति से रहित हमारे पितरोंको अपनी अशौकिकशक्ति से किसी अदृश्यशरीरकायुक्त कर आप यहां उपस्थित करो, वा इस श्राद्धकर्म से उन को अन्यशोभन देह युक्त करो ।

२ जो स्वधामंत्र से तिल मिश्र धानों को में यजमान आपके लिये पिण्डों

तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु-  
मन्यताम् ॥ मं ४३,

इस मंत्र से लेकर

“स्वधा पितृभ्यः पृथिविपद्भ्यः १८ स्वधा पि-  
तृभ्यो जन्तरिक्ष सद्भ्यः’ ७९ ‘स्वधा पितृभ्यो  
दिविषद्भ्यः’ ८०॥

इत्यादि प्रकार से अष्टादश काण्ड की समाप्तिपर्यन्त  
यही श्राद्धविषय निरूपण किया है विस्तर भय से हम ने  
निखिल का उपन्यास नहीं किया है ।

इसी प्रकार सामवेदीय मंत्र ब्राह्मण के द्वितीयप्रपाठक  
के तृतीयखण्ड में भी—

“स्वाहा सोमाय पितृमते ”

इत्यादि १६ एकोनविंशमन्त्रों से श्राद्धकर्म का निरू-  
पण किया है ।

इस प्रकार चारो वेदों के मंत्रों से मृत पितरों के उद्देश  
से विहित पितृयज्ञ का लिङ्गद्वारा निरूपण करे अब वेद के

के सन्निधान में अग्नि की साक्षिता में फैकता हूँ, सो आप को विशेष समर्थ  
वाली तथा प्रभु शक्तिवाली होकर उपस्थित होवें, और यमराजा भी इस कर्म  
को अनुमोदन करे जिसमें आपको सुखका लाभ होय, यह ईमका तात्पर्य है ।

१ जिस प्रकार से इन १९ मंत्रों का श्राद्धकर्म में विनियोग है, वह प्रकार  
गोभिलगृह्य सूत्र ४, ३, २, से लेकर ४, ४, २१ पर्यन्त स्पष्ट है ।

२ अर्थात्-श्रुति, लिङ्ग, वाक्य, प्रकरण, स्थान, समाख्या, यह पद  
प्रमाण वेद के वाक्यों का कर्म में विनियोजक हैं, यह जैमिनीयदर्शन के तृती-  
याध्याय में स्पष्ट है, तहां लिङ्गद्वारा जो वेद के मन्त्र श्राद्धकर्म का प्रतिपादक



मंत्रों का पितृयज्ञ में विनियोग कथन करने वाले तथा श्रुतिरूप से पितृयज्ञ को विधान करने वाले जो शतपथ आदि ब्राह्मणरूप वेद तथा आश्वलायनीय आदि श्रौत सूत्र तथा पारस्कराचार्य आदि प्रणीत गृह्यसूत्र हैं उन द्वारा पितृयज्ञ का निरूपण करते हैं—

## पिण्डपितृयज्ञमीमांसा ।

तहां प्रथम सङ्ग के सङ्ग शतपथ आदि श्रुतियों के वाक्यों का उपन्यास करते हुये † ऋग्वेदीय श्रौतसूत्रों से पिण्ड-पितृयज्ञ के विधान का निरूपण किया जाता है ।

“अमावास्यायामपराह्णे पिण्डपितृयज्ञः ”

आश्वलायनश्रौतसूत्र

पृ० २ कण्डिका ६ सू० १

हैं उन का उपन्यास कर अब जो साक्षात् श्रुतिद्वारा पितृयज्ञ के विधायक वेदवाक्य हैं उन का उपन्यास किया जाता है ।

† यहां इतना विशेष यह भी जान लेना उचित है कि—ऋग्वेदों का तथा ऋग्वेदीय कर्मों का व्यवस्थापक ऐतरेयादि ब्राह्मण तथा आरण्यक एवं आश्वलायन और शाङ्खायन श्रौतसूत्रनामक कल्पसूत्र हैं ।

यजुर्वेदों का तथा यजुर्वेदीय कर्मों का शतपथादि ब्राह्मण तथा, कात्यायन, वौषायन, आश्वतथ्य श्रौतसूत्रादि व्यवस्थापक हैं ।

एवं सामवेदों का तथा सामवेदीयकर्मों का ताण्ड्यमहाब्राह्मण आदि एवं लाट्यायन, द्राह्मण्य आदि श्रौतसूत्र व्यवस्थापक हैं, एवं अथर्ववेदों का तथा अथर्ववेदीयकर्मों का गोपथब्राह्मण तथा शौनक कौषीतकी श्रौतसूत्र व्यवस्थापक हैं, इन से विरुद्ध जो मनमाना वेद के तात्पर्य को मानेगा वह नास्तिक जानना, अतः इसी क्रम से ही यह मीमांसा आरम्भ किया जाता है ।

पिण्डैः क्रियमाणो यः पितृणां यज्ञः सपिण्डपितृयज्ञः,  
अतः पितृदेवत्यकर्मनामधेयमिदमिति बोध्यम्, स च कस्मिन्  
समयेऽनुष्ठेय इत्याकाङ्क्षां शान्तयति—

‘ अमावास्यायामपराह्णे ’ इति ।

अत्र यदधिकं मीमांसनीयं तद् आपस्तम्बीयश्रौत्रसूत्रो-  
पन्यासावसरे मीमांसयिष्यत इति नैतावता सन्तोष्यम् ।

भाषा—अमावास्या तिथि में अपरान्ह समय में पिण्ड-  
पितृयज्ञ का अनुष्ठान करे यह संक्षिप्त सूत्रार्थ है<sup>१</sup>

यहां पर जो विशेष मीमांसा आवश्यक है वह आपस्तम्बीय  
श्रौत्र सूत्र की व्याख्या में आगे कही जायगी,  
यद्यपि

“ अमावास्यायामपराह्णे पिण्डपितृयज्ञेन चरन्ति<sup>२</sup>

इस श्रुति से पिण्डपितृयज्ञ का अनुष्ठान काल अमा-  
वस्या तिथि निर्णित है तथापि अमावास्या में अवश्य करना

१ “पिण्डपितृयज्ञ” इति वक्ष्यमाणस्य कर्मणः समानसंज्ञा, सा च  
पिण्डदानपदार्थस्यैवाऽर्थानुगमाद्, पिण्डैः पितृणां यज्ञ इति पिण्डपितृयज्ञः,  
अतश्च होमनपादयस्तद्व्याप्तिः, ययोजनं चिन्तापास्तदकरणेऽभ्यावृत्तिर्न होमादेः,  
इति कर्त्ताचार्यः ।

अर्थात् वक्ष्यमाण कर्म में पिण्डदान प्रधान है औ होम जप आदिक अङ्ग  
है, इस से पिण्डदान नामक कर्म का नाम पिण्डपितृयज्ञ जानना ।

२ पिण्डदान द्वारा क्रियमाण जो पितरोंका यजन वह पिण्डपितृ यज्ञ है ।

३ इस श्रुतिविषयक विशेष मीमांसा दर्शनीय हो तो “जैमिनीयदर्शन के  
चतुर्थाध्याय के चतुर्थ पाद में “पितृयज्ञः सकाकृत्वादनङ्गस्याद्” इस अष्टमअ-  
धिकरण के शारभाष्य तथा तन्त्रवार्तिक का आलोकन करो, नहीं तो स्वामी  
जी कृत जैमिनीयदर्शन की व्याख्या को देखो ।

चाहिये इस नियम की पुष्टि करनेवाले जो वेद में अर्थवाद रूप इतिहास हैं उन का संक्षेप से उपन्यास करते हैं जिस से यह निश्चय हो जाय कि यह कर्म आवश्यक है—

“प्रजापतिं वै भूतान्युपासीदन् प्रजा वै भूतानि वि  
नो धेहि यथा जीवामेति, ततो देवा यज्ञोपवीतिनो  
भूत्वा दक्षिणं जान्वाच्योपासीदँस्तानब्रवीद् यज्ञो  
वोऽन्नममृतत्वं व ऊर्क् सूर्यो वो ज्योतिरिति ॥ १ ॥  
अथैनं पितरः प्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वाच्योपा-  
सीदँस्तानब्रवीन्मासिमासि वोऽशनं स्वधा वो मनो-  
जवश्चन्द्रमा वो ज्योतिरिति ॥ २ ॥ अथैनं मनुष्याः  
प्रावृता उपस्थं कृत्वोपासीदँस्तानब्रवीत् सायं प्रातर्वो  
ऽशनं प्रजा वो मृत्युरग्निर्वो ज्योतिरिति ॥ ३ ॥

य० ब्रह्म-भा० १ म० १ भा० ४

भाषाभावार्थ—देवता तथा पितर औ मनुष्य यह तीन प्रकार के भूत ( जिस प्रकार से हमारा जीवन हो सो प्रकार हमारा आप विधान करें ) इस कथन के अभिप्राय से प्रजापति के समीप गमन करते भये, तहां पहिले देवताओं ने यज्ञोपवीत० को धारण कर दक्षिण जानु का भूमि पर पात

\* “ दक्षिणं बाहुमुदहत्य शिरोऽवधाय सव्येऽङ्गे प्रतिष्ठापयति दक्षिणं कक्षमन्ववबलम्भं भगतीत्येव यज्ञोपवीती भवति ” १-२-२-इस गोभिलसूत्र से दक्षिण बाहु को ऊपर उठा कर शिर का अधारण कर बायं कंधे पर स्थापित किया हुआ जो वसन वा अजिन वा गून् दक्षिण कांस के नीचे आलम्बन करता है यह यज्ञोपवीत जानना ।

कर प्रजापति के सन्मुख उपस्थित होकर जीविका की याचना की तब प्रजापति ने यह कहा कि यज्ञ आप का अन्न है अमृत आप का ऊर्क (वीर्यप्रद) है और सूर्य आप के लिये प्रकाश है ।

फिर पश्चात्-प्राचीनावीती हुये<sup>१</sup> वामजानु को भूमि पर निवाय कर पितरलोक उपस्थित हुये तब उन पितरों के प्रति प्रजापति ने यह कहा कि मास मास में अमावास्या के दिन आप का भोजन होगा और स्वधारूप मंत्र आप का मनोजवं है और चन्द्रमा आप की ज्योति है ।

फिर प्रावृत्त (निवीती<sup>२</sup>) हुये दोनों जानुओं को भूमि पर निवाय कर मनुष्य उपस्थित हुये तब उन को प्रजापति ने यह कहा कि सायं और प्रातःकाल आप का भोजन है और पुत्रपौत्रादि प्रजा आप लोकों का मृत्यु है और अग्नि आप की ज्योति है ।

यद्यपि यहां पर श्रुति में सामान्य से ही (मासि मासि) इस वाक्य से मास मास में पितरों को भोजन कहा है, तथापि—

१ “सद्यं बाहुपुद्गल्य शिरोवधार्य दक्षिणेऽंशे प्रतिष्ठापयति सद्यं कक्षमन्ववल्गं भरतीत्येवं प्राचीनावीती भवति” इति गोवि० १-२-३ सूत्र से वाम बाहु को ऊपर उठा कर शिर को नम्र कर दक्षिण कन्ये पर स्थापित हुआ जो सूत्र आदि वामकक्ष को आलम्बन करे वद प्राचीनावीत जानना ।

२ मतसरीखे वेग से आप के प्रति अन्न पहुंचाने वाला है ।

३ “निवीतं कण्ठलम्बितम्” अर्थात्—गले में माला की तरह जो सूत्र पड़ना जाय वद निवीत जानना, विशेष निवीताधिकरण में देखो ।

“एष सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमा स  
एतां रात्रिं क्षीयते तस्मिन् क्षीणे ददाति +”

इस अग्रिम श्रुति से अमावास्या का ग्रहण करना ।

एवं च हर अमावस्या में न करने से प्रजापति की आज्ञा के भङ्ग जन्य प्रत्यवाय तथा पितरों के कोप से अनर्थ की प्राप्ति होने से यह अवश्य अनुष्ठेय है यह बोधन किया ।

यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण के प्रथमाष्टक में तृतीयाध्याय के दशम अनुवाक में भी अर्थवाद रूप इतिहास से अमावास्यातिथि में पिण्डपितृयज्ञ का अनुष्ठान आवश्यक रूप से कहा है ।

“इन्द्रो वृत्रं हत्वा, असुरान् परिभाव्य सोऽमा-  
वास्यां प्रत्यागच्छत्, ते पितरः पूर्वद्युरागच्छन् पितॄन्  
यज्ञोऽगच्छत्, तं देवाः पुनरयाचन्त, तमेभ्यो न  
पुनरददुः, तेऽब्रुवन् वरं वृणामहे, अथ वः पुनर्दा-  
स्यामः, अस्मभ्यमेव पूर्वद्युः क्रियत इति १, तमेभ्यः  
पुनरददुः, तस्मात्पितृभ्यः पूर्वद्युः क्रियते, यत्पितृभ्यः  
पूर्वद्युः करोति पितृभ्य एव तद् यज्ञं निष्क्रीय यज-  
मानः प्रतनुते, सोमाय पितृपीताय स्वधा नम इत्याह”

भाषाभावार्थ—जब इन्द्रदेव जी युद्ध द्वारा वृत्रासुर को

† य० श० २-३-४-७ । यह सोम राजा देवों का अन्न है जिस का द्वितीय नाम चन्द्रमा है सो यह चन्द्रमा इस अमावस्या को क्षीण हो जाता है, जिस चन्द्रक्षय के दिन श्राद्ध पिण्डदान करना चाहिये, यह श्रुति का भाव है ।

हनन कर औ असुरों को पराभव कर दर्शयाग के दिन अपने स्थान में आये थे तब उस से एक दिन पूर्व ही पितरलोक वहां पर आन पहुंचे थे तब दर्शादिक यज्ञ भी पितरों को प्राप्त होते भये, तब पितरों के प्रति इन्द्रादि देवताओं ने यह कहा कि यह यज्ञ हमारे हैं सो आप हम को समर्पण करो तब पितरों ने उन को यज्ञ न समर्पण कर यह कहा कि प्रथम आप इस यज्ञ लेने के बदले में हम को कुछ वर-रूप उत्कोच प्रदान करो तब हम आप के प्रति यज्ञ का प्रत्यावर्तन कर देंगे—तब देवताओं ने कहा कि आप इस के बदले क्या चाहते हो तब पितरों ने कहा कि जिस दिन (शुक्लपक्ष की प्रतिपद् को) आप के नाम का दर्शयाग होता है उस से पूर्व दिन अमावास्या में प्रथम हमारे निमित्त याग होना चाहिये ।

तब देवताओं ने इस कथन को स्वीकार किया औ पितरों ने उन के प्रति यज्ञ का प्रत्यर्पण किया,

“ तस्मात् पितृभ्यः पूर्वद्युः क्रियते ”

इस कारण से ही अमावास्या के दिन पितृयाग किया जाता है ।

जिस हेतु से देवताओं ने मूल्य अर्पण कर पितरों से यज्ञ ग्रहण किया है इस हेतु से उस मूल्य के सधानेके लिये

१ अमावास्या के दिन अन्वाधान कर शुक्लप्रतिपद् के दिन दर्शयाग का आरम्भ किया जाता है ।

२ उत्कोच नाम उस का है जिस को घूस वा रिस्वत कहते हैं ।

प्रथम पितृयज्ञ का अनुष्ठानकर फिर दर्शयाग का यजमान अनुष्ठान करे नहीं तो प्रत्यवाय होगा यह श्रुति का भाव है ।

अमावास्यातिथि में भी किस काल में करे, इस आकाङ्क्षा के होने पर कहा है कि—

“अपराह्णे” इति,

अर्थात्-अपराह्ण काल में करे ।

“सवाऽपराह्णे ददाति, पूर्वाह्णे वै देवानां मन्ध्य-  
न्दिनो मनुष्याणाम्, अपराह्णः पितॄणां तस्मादप-  
राह्णे ददाति”

शत. कां० १ प्र० २ ब्रा० ४ कां० ८—

इस शतपथ में, तथा

“अपराह्णभाजो वै पितरः, तस्माद् अपराह्णे  
पितृयज्ञेन चरन्ति”

पूर्वभाग प्र० २ खं० १,

इस गोपथ श्रुति में भी अपराह्ण काल में ही पितृयज्ञ के आरम्भ करने का उपदेश किया है ।

तहां<sup>१</sup> दिन के समान तीन विभाग करने से जो तृतीय भाग है वह अपराह्ण जानना ।

और कोई एक तो दिनके समान दो भागोंमें से द्वितीय भाग को अपराह्ण कहते हैं ।

१ अपराह्ण में पितृयज्ञ करे क्योंकि देवों को भाजने में पूर्वाह्न मिय है और मनुष्योंको, यज्यतद् मिय है, और पितरोंको अपराह्ण मिय है, इससे अपराह्ण में ही पितरों को दे ।

२ अर्थात्-पितर अपराह्णको सेवन करते हैं, इससे अपराह्णमें पितृयज्ञ करे ।

३ तहां मयम कर्कोपाध्याय के कथनानुसार अपराह्ण का निर्वचन करते हैं [ तहां ] इत्यादि से ।

औ कोई एक दिन के समान पांचभागों में से पश्चिम भाग को अपराह्न कहते हैं—

औ कोई एक दिन के नवभाग करने से जो सप्तम भाग है उस को अपराह्न कहते हैं ।

औ (१) कोई एक तो दो २ घटिका के विभाग से रौद्र, चैत्र, मैत्र, सावट, सावित्र, जयन्त, गान्धर्व कुतप, रौहिण, विरश्चि, विजय, नेर्ऋत, माहेन्द्र, वारुण, भद्र, इन पन्द्रह मुहूर्तों का दिनमान मान कर यह कहते हैं कि-जब दिन का दो विभाग किया जाय तो अष्टम मुहूर्त से लेकर पश्चिम सन्ध्या के आरम्भ पर्यन्त अपराह्न जानना,

औ जब दिन का तीन विभाग माना जाय तो एकादशमुहूर्त से लेकर पश्चिमसन्ध्यापर्यन्त अपराह्न जानना, औ जब चार विभाग किया जाय तो दशममुहूर्त के द्वितीयपाद के उत्तरार्द्ध से लेकर द्वादश मुहूर्त के आद्यपाद के अवसान पर्यन्त अपराह्न जानना औ पञ्चधाविभाग किया जाय तो दशममुहूर्त से लेकर द्वादशमुहूर्त के अवसान पर्यन्त अपराह्नकाल जानना.

सर्वथा ही तृतीयग्रहर पितृयज्ञ के आरम्भ का काल है यह निर्विवाद है,

बहुत से निबन्धकार तो †

(१) चतुर्गर्गचिन्तामणि में जो अपराह्न के लक्षण कहे हैं उन का उपन्यास करते हैं (औ) इत्यादि से—

† चतुर्गर्गचिन्तामणि वा श्राद्धखण्ड देखो ।



“कुं यत्र गोपतिर्गोभिः कात्स्न्येन तपति क्षणे,  
स कालः कुतपो ज्ञेयः तत्र दत्तं महाफलम् ” <sup>१५०</sup>

“मुहूर्तस्त्रिसप्तमादूर्ध्वं मुहूर्तान्नवमादूर्ध्वः,  
स कालः कुतपो ज्ञेयः पितॄणां दत्तमक्षयम् ” <sup>१५१</sup>

“दिवसस्याष्टमे भागे मन्दो भवति भास्करः  
स कालः कुतपो ज्ञेयः पितॄणामन्नमक्षयम् ” , <sup>१५२</sup>

अन्हो मुहूर्ता विख्याता दश पञ्च च सर्वदा (४)

तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः ”  
मध्यान्हे सर्वदा यरमान्मन्दोभवति भास्करः ,  
तस्मादनन्तफलदस्तत्रारम्भो विशिष्यते ” <sup>१५३</sup>

इत्यादि प्रमाणों से दिन का अष्टम अंश जो कुतप-  
नाम मुहूर्त है वही पितृयज्ञ के आरम्भ का काल है, यह  
कहते हैं—

१ (यत्र) जिस समय में (गोपतिः) सूर्य (गोभिः) अपनी किरणों  
से (कुं) पृथिवी को (कात्स्न्येन) संपूर्ण रूप से व्याप्त हो कर तपता है सो  
काल कुतप जानना चाहिये, तिस समय पितरों के प्रति प्रदत्त महाफलवाला है।

२ सप्तम मुहूर्त में ऊपर और नवम मुहूर्त से पूर्व जो मुहूर्त है वह कुतप है,  
तिस समय पितरों के प्रति दिया हुआ अक्षय होता है।

३ जिस दिवस के अष्टम भाग में सूर्य तेज हो कर मन्दप्रकाशवाला  
होता है वह काल कुतप जानना, इस काल में पितरों के प्रति दीया हुआ अन्न  
अक्षय होता है।

४ दिन के जो १५ पञ्चदश मुहूर्त हैं उन में से जो अष्टम मुहूर्त है वह  
कुतप कहा जाता है, जिस हेतु से उस मध्याह्नकाल में सूर्य मन्द होता है  
इस हेतु से अनन्तफल के देनेवाले आन्न का आरम्भ उस काल में श्रेष्ठ है।

मनुजी ने भी

“त्रीणि<sup>१</sup> श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः”

इस वाक्य से कुतपकाल को श्रेष्ठ कहा है,  
और कोई एक तो<sup>२</sup>

“मध्यान्हः (३) खड्गपात्रं च तथा नेपालकंवलः,  
रूप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टमो मतः  
पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य सन्तापकारिणः  
अष्टावेते यतस्तस्मात्कुतपो इति विश्रुताः”

इस वचन से मध्यान्ह आदि आठ पदार्थों का नाम  
कुतप मानते हैं<sup>३</sup> ।

इन सर्व वचनों का सार यह है कि मध्यान्ह के अवसान-  
काल से लेकर सायान्ह से पूर्व पूर्व ही पितृयज्ञ के अनु-  
ष्ठान का काल है ।

इति आश्वलायनीय श्रौतधूत्रे द्वितीयाध्याये षष्ठी कण्डिकायां प्रथमसूत्र व्याख्यानम्

इस प्रकार पितृ यज्ञ का काल निरूपण कर अब उस  
का अनुष्ठान प्रकार कहते हैं—

१ (दौहित्र) स्वकीय कन्या का पुत्र तथा कुतप और तिल यह तीन  
पदार्थ श्राद्ध में पवित्र हैं, अ० ३ श्लो० २३५ ।

२ मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर आदि निबन्धकार ।

३ मध्यान्ह, खड्गपात्र, नेपालकंवल, रूपा, दर्भा, तिल, गाव, दौहित्र,  
इन आठों का नाम कुतप है, क्योंकि कु नाम कुत्सित पाप का है और यह आठों  
पाप को संताप करने वाले हैं अर्थात् यह आठों पाप के नाशक हैं, इस से  
इन का नाम कुतप है ।

सू० दक्षिणाग्नेरेकोल्मुकं प्राग्दक्षिणाप्रणयेत् ।

“ये रूपाणि ” इति, २-६-२-

अन्वयार्थः—दक्षिणाग्नेः सकाशाद् ( एकोल्मुकम् ) एकतः प्रदीप्तमुल्कं गृहीत्वा तस्मादेव दक्षिणाग्नेः प्राग्दक्षिणास्यां दिशि स्थापयेद् ( ये रूपाणि ) इति मन्त्रेण,

भाषा—दक्षिणाग्नि से एक उल्मुक को ग्रहण कर फिर “ ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाऽसुराः सन्तः स्वधया चरन्ति, परा पुरो निपूरो ये भरन्त्यग्निष्ठां लोकान् प्रणुदात्यस्माद् ”

यजु० १०२ मं० १०

इस मंत्र को पढ़कर उस दक्षिणाग्निके (की) पूर्व-दक्षिण दिशा में ( प्रणयेत् ) स्थापन करे,

उल्मुक स्थापन क्यों किया जाता है इस का कारण शतपथ में निरूपण किया है—तथाहि — २-३ ४-

‘ स यदनिधायोल्मुकमथैतत् पितृभ्यो दद्यादसुर-  
रक्षसानि हेषामेतद् विमथ्नीरँस्तथो हैतत्पितृणाम-

१ एक ओर (तरफ) अग्नि से प्रज्वलित काष्ठ को उल्मुक कहते हैं ।

२ ( येऽसुराः ) जो असुर ( रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाः सन्तः ) अपने रूप को छिपा कर पितरों के समान रूप को धारण करते हुये ( स्वभया ) पितृभ्य के निमित्त ( चरन्ति ) इस पितृयज्ञ के स्थान में विचर रहे हैं, तथा जो ( परा पुरः ) स्थूल शरीर ( निपूरः ) निष्ठुष्टपूरी अर्थात्, सूक्ष्म शरीर को ( भरन्ति ) धारण करते हैं ( तान् ) उन असुरों को यह उल्मुकरूप अग्नि ( अस्माद्धो-  
वाम् ) इस पितृयज्ञस्थान से ( प्रणुदाति ) दूर करे

सुररक्षसानि न विमघ्नते तस्मात्परस्ताद् उल्मुकं नि  
दधाति १४ स निदधाति “ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना  
असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति ,” इति

अर्थात्—यदि उल्मुक को न स्थापन कर पितरों के  
प्रति पिण्ड प्रदान किया जाय गा तो असुर और राक्षस  
उन्मथन करेंगे इस से असुर इस यज्ञ के भागी मत होंय  
किन्तु यहां से चले जाय इस लिये उल्मुक को स्थापन करे ।

सू० सर्वकर्माणि तांदिशम् २-६—३

( अन्वय०—उल्मुकस्थापनवद् इतराण्यपि सर्वाणि कर्माणि  
तां प्राग्दक्षिणां दिशम्, अभिमुखानि कर्तव्यानि ।

भाषा—जिस दक्षिणदिशा की तरफ उल्मुक स्थापन  
किया है उसी दिशा के अभिमुख ही और सब कर्म करना  
चाहिये ।

इस दिशा की ओर क्यों करे इस में कारण शतपथ में  
कहा है यथा—

“ एतस्यां हि दिशि पितृलोकस्य द्वारम् ”

“ दक्षिणाप्रवणे कुर्यादित्याहुः † दक्षिणाप्रवणो  
वै पितृलोकः”

शतपथ की ११ ब० ८ ब्रा० ४

अर्थात्—दक्षिणदिशा के तरफ पितृलोक का द्वार है  
इस से दक्षिणदिशा के अभिमुख ही पिण्डदानादि करना  
चाहिये ।

† दक्षिण की ओर निम्न स्थान में पितृयज्ञ करे ऐसे तत्त्ववेत्ता कहते हैं,  
क्योंकि इसी ओर पितृलोक है ।

-सू० उपसमाधायौभौ परिस्तीर्य दक्षिणाग्नेः प्रागुदक्  
प्रत्यगुदग्वैकैकशः पात्राणि सादये च चरुस्थालि\*  
शूर्पस्फ्योलूखल मुशलस्तुवध्रुवकृष्णाजिनसकृदाच्छिन्ने-  
धमेमेक्षणकमण्डलून्, २—६—४—

एकेनैव प्रयत्नेन छिन्नाः कुशा-सकृदाच्छिन्नाः कुशाः,  
अ० चरुस्थाली-ध्रुवाशब्दयोश्चानन्दसं ह्रस्वत्वं ज्ञेयम्, निगदव्या-  
ख्यात मितरत् ।

भापा--(उभौ) श्रौत वा स्मार्त अग्नि को, (उपसमाधाय)  
स्थान परिष्कारपूर्वक अभिमुख स्थापन कर, ( परिस्तीर्य )  
चारो ओर(१) और चार २ कुशों से आच्छादित कर फिर ।

\* ( शूर्पम् ) पुरोडाशादिसंचान्धिनां व्रीह्यादीनां निस्तुपीकरणोपयोगि  
पात्रम्, ( स्फ्यः ) खदिरकाष्ठनिर्मितोऽरन्निपरिमितो दीर्घश्चतुरंगुलपरिमित  
विस्तारः खड्गसदशाकारवान् पात्रविशेषः,

( उलूखलम् ) पलाशकाष्ठनिर्मितं द्वादशांगुलपरिमितोच्छ्रायमुपरितनार्ध  
भागेविलयुक्तं व्रीह्यादिकण्डनोपयोगिपात्रम् ( मुसलम् ) उलूखलार्धत्रिगुणा-  
यामं खदिरकाष्ठनिर्मितमुद्यमननिपातनेन कण्डनोपयोगि, ( तुवः ) खदिरकाष्ठ-  
निर्मितोऽरन्निमात्रदीर्घः अग्रभागेऽङ्गुष्ठपूर्वमात्रवर्तुलविलयुक्त आज्यहोमादौक-  
रणभूतः “ सवत्प्राज्यादिद्रव्यमस्माद् ” इतिच्युत्पत्तिसिद्धः पात्रविशेषः ( ध्रुवा )  
जुहुमानाका रात्रिकङ्कतकाष्ठनिर्मिता होमाद्यर्थं त्वेण गृहमाणस्याज्यस्याधारभूता  
यागावसानपर्यन्तं वेद्यां विद्यमानत्वेनस्थिःभूता “ ध्रुवति=अमचलिता भवति”  
इत्यन्वर्थः पात्रविशेषः ( कृष्णाजिनम् ) व्रीह्याद्यवघातकाले उलूखलस्याधः  
स्थापनोपयोगि कृष्णमृगचर्म, ( सकृदाच्छिन्नाः ) एकेनैव प्रयत्नेनोत्पादिताः  
कुशाः, ( इध्म ) होमोपयोगि पञ्चदशतरुपाकं काष्ठम् ( मेक्षणम् ) अश्वत्थकाष्ठ-  
निर्मितम् अरन्निपरिमितम् अग्रभागे चतुरङ्गुलचतुरस्रफलकयुतं, फलवराशिपृष्ठा-  
गदण्डयुतं पात्रम्, ( कमण्डलूः ) जलाधारः पात्रविशेषः भसिद्ध एव ।

( १ ) “ पौडशाभिर्दधैरग्नेः प्राच्यादिषु परिस्तृतिः” इतिवचनात्-पूर्व

दक्षिणाग्नि के पूर्व-उत्तर वा पश्चिम उत्तर की ओर एक एक पात्र स्थापन करे, वह पात्र कौन है, इस पर कहते हैं “चरुस्थाली” इति, अर्थात्—चरु बनाने के लिये स्थाली, ( शूर्प ) बांस कर निर्मित व्रीहि आदि के वितुषी करने का पात्र ( स्प्य ) खदिरकाष्ठनिर्मित औ अरलिपरिमितदीर्घ तथा चार अङ्गुल परिमित विस्तार वाला खड्गसदृश पात्र, ( उलूखल ) पलाशकाष्ठनिर्मित तथा द्वादशअङ्गुलपरिमित उचायीवाला तथा आधे भाग में ऊपर जा कर विलयुक्त व्रीहि आदि के कण्डन का उपयोगी पात्र ( मुशल ) खदिरकाष्ठनिर्मित औ उलूखल के अर्द्धभाग से त्रिगुणविस्तारवाला व्रीहि के कण्डन करने वाला दण्डविशेष ( स्तुव ) खदिरकाष्ठनिर्मित अरलिमात्र दीर्घ औ अग्रभाग में अङ्गुष्ठ के पर्वमात्र परिमाणवाला वर्तुलाविल से युक्त घृतके होम का साधनभूत पात्रविशेष ( ध्रुवा ) विकटतनामक वृक्षसंवन्धिकाष्ठनिर्मित तथा होमार्थस्थापित घृत का आधार विशेष ( कृष्णाजिन ) व्रीहि के कूटने काल में उलूखल के तले स्थापन का उपयोगी कृष्णमृग का चर्म, ( सकृदाच्छिन्न ) एक व्यापार से ही उत्पाटन किये हुये कुश ( इध्म )

माच्यां प्रथममेखलोपरि चतुर्भिर्दधेस्तथैव दक्षिणस्यां प्रतीच्यामुदीच्यां च क्रमेण स्तरणम्, परिस्तरणपदार्थः ।

१ एक ही यज्ञ से व्रीहि छेदन करे इस में कारण तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा है यथा—“सकृदाच्छिन्नं वर्हिर्भवति, सकृदिव हि पितरः” तै० ब्रा०

१-३-१०-५—

अर्थात्—पिण्डों के अग्रभाग में जो कुश बिछाया जाती है वह एक ही

पंचदशसंख्यक काष्ठ ( मेक्षण ) अश्वत्थकाष्ठनिर्मित अराक्षि मात्रपरिमाणवाला अग्रभाग में चारअङ्गुल चतुष्कोणफलक-युक्त जो दूर्वासदृशपात्र वह मेक्षण- जानना, कमण्डलु प्रसिद्ध ही है, इन पात्रों को दक्षिणाग्नि के उत्तर ओर स्थापन करे ।

सू० दक्षिणतोऽग्निष्ठमारुह्य चरुस्थालीं ब्रीहीणां पूरणं निमृजेद्-२-६-५-

अन्वय०—( अग्निष्ठं ) शकटं दक्षिणत आरुह्य, तत्रैव शूर्पे स्थालीं निधाय ब्रीहिभिरापूरयेद् तां पूर्णां ( निमृज्याद् ) यथोपरितनाद् विलदेशाच्छूर्पोपरि पतेयुस्तथाकुर्व्याद् ।

भाषा—दक्षिणाग्नि से ईपत् दक्षिण की ओर स्थित जो ब्रीहिपूरित शकट है तिस ( अग्निष्ठं ) शकट को (दक्षिणत आरुह्य) दक्षिण की तरफ से आरोहण कर तिस शकट के मध्य में शूर्प रख कर फिर शूर्प के बीच में (चरुस्थालीं) चरु बनाने वाली स्थाली को स्थापन कर ब्रीहि से पूरण करे फिर ( ब्रीहीणां पूरणं ) ब्रीहिकर पूरित उस स्थाली को ( निमृजेद् ) शोधन करे अर्थात् इस प्रकार उस स्थाली को दोनों हस्तों से हिलोरा दे जिस में स्थाली के बराबर ब्रीहि उस में रहजाय और शेष उस शूर्प में गिर पड़े ।

व्यापार से जितनी छेदन किया जाय उतनी ही लेनी चाहिये कुछ बारंवार दात्र का व्यापार न करे क्योंकि “सकृद्वहि पितरः” अर्थात्—जिस हेतु से पितरलोक एक ही बार मग्न से पितृभाव को प्राप्त भयें हैं कुछ पितृत्व के लिये बारंवार नहीं मरे हैं इस हेतु से बारंवार छेदन मत करे, इसी प्रकार अन्तर्गम में कहा है ।

सू० परिशन्नान् निदध्याद्-२-६-६

अन्वयार्थः—( परिशन्नान् ) स्थाल्यास्यदेशाच्छूर्पोपरि ये पतितास्तान् शकटे निदध्याद्—

भाषा—(परिशन्नान्) हिलोरा देने से स्थाली के मुख से जो धान्य शूर्प में गिरे हों उन व्रीहियोंको ( निदध्याद् ) फिर शकट में स्थापन करे ।

सू० कृष्णाजिन उलूखलं कृत्वेतरान्

पत्न्यवहन्यादविवेचम् २-६-७

अ० (इतरान्) व्रीहिन् स्थाल्यन्तर्गतान्, ( अविवेचम् ) अविविच्य, अविच्य हन्यात्, सरलार्थमन्यत् ।

भाषा—कृष्णामृग के चर्म के ऊपर उलूखल को स्थापन कर ( इतरान् ) स्थालीअन्तर्गत व्रीहियों को पत्नी अवहनन करे अर्थात्—हिलोरा देने से जो स्थाली में शेष धान्य रह गये थे उन को उलूखल में गेरकर कूटे, परन्तु हनन करने से अनन्तर ( अविवेचम् ) धान्यों का विवेक मत करे ।

अर्थात्—शूर्प में गेर कर दो तीन बार ही उन धानों को फटकारे कुछ तुप सहित धान्यों से तुपराहितों को पृथक् करने के लिये अमनीया मत करे ।

सू० अवहतान् + सकृत्प्रक्षाल्य दक्षिणाग्नौ  
श्रपयेद्-२-६-८

भाषा—( अवहतान् ) कूटे हुये उन धान्यों को (सकृत्)

† अवहतेषु अवहतवचनं शूर्पेण पुनः पुनर्निष्पृषीकरणरूपफलीकरणानि-  
इत्यर्थम्,



एकवार ( प्रक्षाल्य ) प्रक्षालन कर, ( १ ) दक्षिणाग्नि में ( अपयेव् ) पकावै ।

सू० अर्वागतिप्रणीतात् स्फ्येन लेखामुल्लिखेद्  
“अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः” इति २-६-९

भाषा—“अपहता \* असुरा रक्षांसि वेदिषदः” यज० ११८

इस मंत्र को पढ़ कर स्फ्य से एक रेखा का उल्लेख करे, कौन स्थान में रेखा करे, इस पर कहा है कि ( अर्वागतिप्रणीतात् ) अर्थात्—दक्षिणाग्नि औ अतिप्रणीता के मध्य में रेखा निकासे ।

सू० तामभ्युक्ष्य सकृदाच्छिन्ने रेवस्तीर्य्य आसा  
दयेदभिघार्य्य स्थालीपाकमाज्यं सर्पिरनुत्पूतं नवनीतं  
ध्रुवायामाज्यं कृत्वा दक्षिणतः २-६ १०

अन्वय०—तां लेखामभ्युक्ष्य सकृदाच्छिन्ने रेवस्तीर्य्य ध्रुवा-  
यामाज्यं कृत्वा दक्षिणाग्नेर्दक्षिणतः निधाय, तेन आज्येन  
स्थालीपाकमभिघार्य्य दक्षिणाग्नेः पश्चादासादयेद्, यदि नव-  
नीतमाज्यकार्य्यार्थं स्यात् तदास्याग्निसंयोगेन विलापनमात्रं  
कृत्वा अन्यस्मिन् पात्र आनीय पवित्राभ्यां तूष्णीमुत्पूय ततो  
ध्रुवायां कृत्वा तेनाभिघार्य्यम्, द्वितीयाज्यग्रहणस्येदं प्रयोजनं

१ अर्वात्—अनेकवार प्रक्षालन मत करे ।

\* ( वेदिषदः ) प्रछन्नरूपेण वेद्यां स्थिता ये असुरास्ते ( अपहताः ) अप-  
गता भवन्तु तथा रक्षांस्यपि ( अपहतानि ) अपगतानि भवन्तु ।

अर्वात्—वेदि में स्थित जो अमुर औ राक्षस हैं वह वहाँ से अपगत  
हों अर्थात् यहाँ से दूर गमन करें ।

यत्पात्रान्तरस्थमुत्पूय पश्चाद्भुवायां ग्रहणमित्येवमर्थम्, सर्पिः= पक्वं घृतं, नवनीतम्=अपक्वम् ।

भाषा—(तामभ्युक्ष्य) तिस रेखा को जल से प्रोक्षण कर फिर (सकृदाच्छिन्नैः) एक प्रयत्न से उत्पाटन हुये कुशों से (अवस्तीर्य) उस रेखा को आच्छादित कर फिर (भुवा-यामाज्यंकृत्वा) भुवानामक पात्र में घृत को स्थापन कर और (दक्षिणतः) दक्षिणाग्नि की दक्षिण और भुवा को रख कर तिस घृत से (स्थाली पाकम्) स्थाली में पके हुये चरु को (अभिघार्य) अभिधारण ॐ कर (आसादयेद्) दक्षिणाग्नि की पश्चिम तरफ यजमान स्थित हो जाय, यदि घृत के स्थान में (अनुत्पूतं नवनीतं) गरम कर वस्त्र से न पूत हुवा माखन होय तो उस को ( सर्पिः ) अन्य पात्र में गरम कर पूतकर फिर भुवा में गेर कर उस से अभिधारण करे ।

सू० आज्ञनाभ्यञ्जनकशिपूपवर्हणानि† २-६-१०

अन्वया० एतानि दक्षिणाग्नेर्दक्षिणतो निदध्याद्,

भाषा—(आञ्जन) कज्जल, (अभ्यञ्जन) अवटन, (कशिपु) मंचस्थानापन्न रुईदार गदेला, ( उपवर्हण ) सिरहाना, इन को भी वहाँ पर स्थापन करे ।

\* सरवृधृतेन सेकोऽभिधारणम्, गरम घृत स सेचन करने का नाम अभिधारण है ।

† आ=ईपद् अज्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या कज्जलादि आञ्जन—पदेनोच्यते, अभितः अङ्गं सर्वमज्यते येनेति व्युत्पत्त्याऽभ्यङ्गसाधनं द्रव्यमभ्यञ्जनमित्युच्यते, कार्पासपूर्णमासनं मृदुतरं कशिपुपदवाच्यम्, कार्पासपूर्णं शिरसोऽधस्तात् शयनकाले यद् ध्रियते तदुपवर्हणपदवाच्यम् ।

‡ अर्थात्—जहाँ पर दर्भ के ऊपर स्थालीपाक स्थापन किया गया है उस के समीप इन को भी स्थापन करे ।

सू० प्राचीनावीतीधममुपसमाधाय मेक्षणेनादाया-  
वदानसंपदा जुहुयात् 'सोमायपितृमते स्वधा  
नमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वधानम' इति,  
२-६-१२—

अन्वया० इध्यम्-इति जातावेकवचनम्, होमार्थं पञ्च-  
दश संख्यकानि काष्ठानि उपसमाधाय, मेक्षणेन चरुमादाय  
अवदानसंपदा जुहुयादित्यर्थः, नात्र स्वाहाकारः प्रयोक्तव्यः  
स्वधानमः शब्दस्यैव प्रदानार्थत्वेनोपादानाद्,  
स्पष्टं चेत् तैत्तिरीयब्राह्मणे—१।३।१०।२

भाषा—प्राचीनावीती हो + कर ( इधममुपसमाधाय )  
होम के लिये १५ काष्ठों को अभिमुख अग्नि में स्थापन कर  
फिर मेक्षण से चरु को (आदाय) ग्रहण कर (अवदानसंपदा)  
होम परिमितभाग के खंडनादिद्वारा ( जुहुयाद् ) अग्नि में  
हवन करे ।

किन मंत्रों से हवन करे, इस पर कहा है कि "सोमाय  
पितृमते स्वधा नमः॥ अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः" इति ।

१ अवदानसंपदम् = उपस्तरणं, द्वावदानं, इविषांऽभिघारणं, प्रत्यभिघा-  
रणं च, तथाऽवदानसंपदा जुहुयादित्यर्थः ।

॥ २६ इस पृष्ठ के टिप्पण में देखो ।

२ उपस्तरणपूर्वक इवि का अभिघारण कर फिर होमपरिमित भाग को  
खंड=काट कर अभिघारण कर होम करे ।

॥ पितृसंयुक्त सोमदेव के प्रति नमस्कार पूर्वक यह पितृदेश्यक इवि  
प्रदत्त हो, तैत्तिरीयब्राह्मण में तो ( पितृपिताय ) यह पाठ है, पितरदेवों को  
पीत जो सोम है, यह उस का अर्थ है, ( कव्यं = पितृदेवस्य इविः , तद् वद-

मंत्रों के मध्य में जो (स्वधानमः) शब्द है वह पितरों के प्रति हविप्रदानार्थ है, इसी से ही यहां पर स्वाहाकार के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है ।

इस प्रकार तैत्तिरीय ब्राह्मणोक्तक्रम से होम का विधान कर इदानीं यजुर्वेदीयमंत्रों के पाठक्रम से हवन विधान करते हुये पक्षान्तर कहते हैं ।

सू० स्वाहाकारेण वा आग्निं पूर्वं यज्ञोपवीती २-६:१३

अन्वया० ( वा ) अथवा यज्ञोपवीती भूत्वा स्वधानमः शब्दस्य स्थाने स्वाहाकारं कृत्वा पूर्वं अग्निं जुहुयाद्, 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा, इति मंत्रं पूर्वमुच्चार्य जुहुयादित्यर्थः ।

भाषा—(वा) अथवा यज्ञोपवीती हो कर (स्वाहाकारेण) स्वधानमः शब्द के स्थान में स्वाहा-इस पद का प्रयोग कर (पूर्व) पहिले ( अग्निम् ) अग्नि को उद्देश कर होम करे अर्थात् “अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा” \* इसमंत्र को प्रथम उच्चारण कर होम करे ।

इस + पक्ष में एक तो मंत्रों का विपर्यय औ एक स्वधानमः शब्द के स्थान में स्वाहा शब्द का प्रयोग औ एक यज्ञोपवीतित्व, यह तीन प्रकार का विशेष है<sup>१</sup> ।

तीति कव्यवाहनः तस्मै, अग्नये ) अर्थात्—पितरोद्देश्यक अन्नरूप कव्य को प्राप्त कराने वाले अग्निदेव के प्रति यह हवि प्रदत्त हो ।

१ यहां पर “ तिस्रभाहुतीर्जुहोति ” इस श्रुति के अनुसार “ यमाया-द्विग्वते पितृमते स्वाहा ” तृतीय मंत्र को उच्चारण कर एक आहुति और भी करनी, यह सब आगे शांखायनादि सूत्रों में स्पष्ट है । \* यजु० अ० २ मं २९

१ श्रुति तथा श्रौत सूत्रों के प्रमाण से दोनों पक्ष समीचीन जानने ।

२ अर्थात्—“अग्नये कव्यवाहनाय” इस का मध्यमोच्चारण औ (सोमाय) इस का अनन्तर उच्चारण यह विपर्यय है ।

सू० मेक्षणमनुप्रहृत्य प्राचीनावीती लेखां त्रिरुदके-  
नोपनिनयेत् “शुन्धन्तां पितरः, शुन्धन्तां पिता-  
महाः, शुन्धन्तां प्रपितामहाः, इति—२-६१४

अ० प्राचीनावीतीग्रहणं स्वाहाकारपक्षमेक्षणप्रहरणोत्तर  
कालमपि प्राचीनावीतित्वप्राप्त्यर्थम्, उभयस्मिन् पक्षेऽपि  
मेक्षणमग्नावनुप्रहर्तव्यमेव, लेखायां त्रिभिर्मन्त्रैर्पिण्डस्थानेषु वा-  
रत्रयमुदकं निनयेद् ।

भाषा—( मेक्षणम् ) जिस मेक्षण से होम किया था  
तिस मेक्षण को ( अनुप्रहृत्य ) अग्नि में फेंक कर प्राचीना-  
वीती हो कर ( लेखाम् ) पूर्वोक्तरेखा को ( त्रिः ) तीन बार  
( उदकेन ) जल कर ( उपनिनयेत् ) शोधन करे ।

अर्थात्—शुन्धन्तां पितरः इस मंत्र को पढ़ कर रेखा  
के मूल में जल गेरे औ ( शुन्धन्तां पितामहाः ) इस मंत्र को  
पढ़ कर रेखा के मध्य में जल गिरावे औ ( शुन्धन्तां प्रपिता-  
महाः ) इस मंत्र को पढ़कर रेखा के अग्रभाग में जल गिरावे ।

सू० तरुणां पिण्डान् निष्टणीयात्पराचीनपाणिः  
पित्रे पितामहाय प्रपितामहाय “ एतत्तेऽसौ ये च  
त्वामत्वानु ” इति २—६—१५—

१ पूर्व सूत्र में कथित जो स्वाहाकार करन पक्ष है तिस पक्ष में भी मेक्षण  
को अग्नि में फेंककर फिर प्राचीनावीती हो जाय इस के शोधनार्थ सूत्र में  
प्राचीनावीती पद का पुनः उपादान किया है ।

२ “तूष्णीं मेक्षणमादधाति” इस तैत्तिरीय ब्राह्मण के वचन से मेक्षण के  
होमकाल में किसी मंत्र का उच्चारण न करे यह भी जानो ।

३ वक्ष्यमाण काल्हायन औतसूत्र से रेखा के ऊपर दर्भ भी बिछाना ।

अन्वया० तस्याम्=लेखायाम्, निष्टृणीयाद्=दद्याद्, निपरणं चात्र पित्र्येणैव तीर्थेनानुष्ठेयम् अत एवोत्तानपाणिरित्यर्थकं पराचीनपाणिरित्युपात्तम्—असावित्यस्य स्थाने संबुद्ध्यन्तानि पित्रादीनां नामानि गृहीयाद्—

भाषा—( पराचीनपाणिः ) उत्तानहस्तवाला यजमान ( तस्याम् ) तिस लेखा में ( पिण्डान् ) होमशेषभूत चरुनिर्मित विल्वफलतुल्य गोलाकार अन्न को ( निष्टृणीयाद् ) पितृतीर्थ से स्थापन करे, इन पिण्डों का संप्रदान कौन है इस पर कहा है कि ( पित्रे-पितामहाय-प्रपितामहाय )-किस मंत्र को उच्चारण कर प्रदान करे इस आकांक्षा के होने पर कहा है कि “ एतत्तेऽसौयेचत्वामत्रानु ” इति,

अर्थात्—(एतत् ते पितर्देवशर्मन् ये च त्वामत्रानु) इस मन्त्र को उच्चारण कर रेखा के मूल में पिता के लिये प्रथम पिण्ड स्थापन करे फिर पिता इस पद के स्थान में पितामह शब्द उच्चारण कर रेखा के मध्य भाग में प्रथमपिण्ड से आग्नेय कोण में पितामह के लिये द्वितीय पिण्ड स्थापन करे, फिर प्रपितामह पद का उच्चारण कर रेखा के अग्रभाग

१ जब पितृतीर्थ से पिण्ड का स्थापन किया जायगा तब ही हस्त उत्तान होता है इस से उत्तान हस्त कथन से पितृतीर्थ का लाभ जानना, अद्गुष्ट औ प्रदेशिनी के अन्तराल का नाम पितृतीर्थ है ।

२ जिस के प्रति दान किया जाय वह दान का संप्रदान है ।

३ हे देवदत्तशर्मन् पितः (एतत्) यह पिण्ड (ते) आप के अर्थ में स्थापन करता हूँ, औ हे पितः (ये च) जो अन्य (त्वामन्) आप के अनुयायी छेपशुक्र हैं उन के प्रति भी यही स्थापन करता हूँ ।

सू० मेक्षणमनुप्रहृत्य प्राचीनावीती लेखां त्रिरुदके-  
नोपनिनयेत् “शुन्धन्तां पितरः, शुन्धन्तां पिता-  
महाः, शुन्धन्तां प्रपितामहाः, इति—२-६१४

अ० प्राचीनावीतीग्रहणं स्वाहाकारपक्षमेक्षणप्रहरणोत्तर  
कालमपि प्राचीनावीतित्वप्रापणार्थम्, उभयस्मिन् पक्षेऽपि  
मेक्षणमग्नावनुप्रहर्तव्यमेव, लेखायां त्रिभिर्मन्त्रैर्पिण्डस्थानेषु वा-  
रत्रयमुदकं निनयेद् ।

भाषा—( मेक्षणम् ) जिस मेक्षण से होम किया था  
तिस मेक्षण को ( अनुप्रहृत्य ) अग्नि में फेंक कर प्राचीना-  
वीती हो कर ( लेखाम् ) पूर्वोक्तेरेखा को ( त्रिः ) तीन बार  
( उदकेन ) जल कर ( उपनिनयेत् ) शोधन करे ।

अर्थात्—शुन्धन्तां पितरः इस मंत्र को पढ़ कर रेखा  
के मूल में जल गेरे औ ( शुन्धन्तां पितामहाः ) इस मंत्र को  
पढ़ कर रेखा के मध्य में जल गिरावे औ ( शुन्धन्तां प्रपिता-  
महाः ) इस मंत्र को पढ़कर रेखा के अग्रभाग में जल गिरावे ।

सू० तस्यां पिण्डान् निष्टणीयात्पराचीनपाणिः  
पित्रे पितामहाय प्रपितामहाय “ एतत्तेऽसौ ये च  
त्वामत्रानु ” इति २—६—१५—

१ पूर्व सूत्र में कथित जो स्वाहाकार करन पक्ष है तिस पक्ष में भी मेक्षण  
को अग्नि में फेंककर फिर प्राचीनावीती हो जाय इस के बोधनार्थ सूत्र में  
प्राचीनावीती पद का पुनः उपादान किया है ।

२ “तूष्णीं मेक्षणमादधाति” इस तैत्तिरीय ब्राह्मण के वचन से मेक्षण के  
होमकाल में किसी मंत्र का उच्चारण न करे यह भी जानो ।

३ चक्षुषाण काल्यायन श्रौतसूत्र से रेखा के ऊपर दर्भ भी बिछाना ।

अन्वया० तस्याम्=लेखायाम्, निपृणीयाद्=दद्याद्, निपरणं चात्र पित्र्येणैव तीर्थेनानुष्ठेयम् अत एवोत्तानपाणिरित्यर्थकं पराचीनपाणिरित्युपात्तम्—असावित्यस्य स्थाने संबुद्ध्यन्तानि पित्रादीनां नामानि शृङ्गीयाद्—

भाषा—( पराचीनपाणिः ) उत्तानहस्तवाला यजमान ( तस्याम् ) तिस लेखा में ( पिण्डान् ) होमशेषभूत चरुनिर्मित विल्वफलतुल्य गोलाकार अन्न को ( निपृणीयाद् ) पितृतीर्थ से स्थापन करे, इन पिण्डों का संप्रदान कौन है इस पर कहा है कि ( पित्रे-पितामहाय-प्रपितामहाय )-किस मंत्र को उच्चारण कर प्रदान करे इस आकांक्षा के होने पर कहा है कि “ एतत्तेऽसौयेचत्वामत्रानु ” इति,

अर्थात्—(एतत् ते पितर्देवशर्मन् ये च त्वामत्रानु) इस मन्त्र को उच्चारण कर रेखा के मूल में पिता के लिये प्रथम पिण्ड स्थापन करे फिर पिता इस पद के स्थान में पितामह शब्द उच्चारण कर रेखा के मध्य भाग में प्रथमपिण्ड से आग्नेय कोण में पितामह के लिये द्वितीय पिण्ड स्थापन करे, फिर प्रपितामह पद का उच्चारण कर रेखा के अग्रभाग

१ जब पितृतीर्थ से पिण्ड का स्थापन किया जायगा तबही हस्त उत्तान होता है इस से उत्तान हस्त कथन से पितृतीर्थ का लाभ जानना, अङ्गुष्ठ औ मधेशिनी के अन्तराल का नाम पितृतीर्थ है ।

२ जिस के प्रति दान किया जाय वह दान का संप्रदान है ।

३ हे देवदत्तशर्मन् पितः (एतत्) यह पिण्ड (ते) आप के अर्थ में स्थापन करता हूँ, औ हे पितः (ये च) जो अन्य (त्वामनु) आप के अनुयायी लेपभुक्त हैं उन के प्रति भी यही स्थापन करता हूँ ।



में द्वितीय पिण्ड से आग्नेय कोण में प्रपितामह के लिये तृतीय पिण्ड स्थापन करे ।

सू० तस्मै तस्मै य एषां प्रेताः स्युरिति गाणगारिः

प्रत्यक्षमितरानर्चयेत् तदर्थत्वाद् २-६-१६

अन्वया० एषाम्=पित्रादीनां मध्ये ये प्रेताः स्युः तस्मै२ पिण्डदानम्, इतरान्=जीवतः प्रत्यक्षमर्चयेद्, इतिगाणगारेर्म-  
तम्, तत्र हेतुः तदर्थत्वाद्=कर्मणः पितृप्रीत्यर्थत्वादित्यर्थः ।

भाषा—(एषाम्) इन पितृ आदि तीनों के मध्य में से (ये प्रेता स्युः) जो मृत हैं (तस्मै२) तिन२ के प्रति पिण्डदान करे औ (इतरान्) अन्य जीवत् पितरों को (प्रत्यक्षम्) साक्षात् (अर्चयेद्) पूजन करे, क्योंकि (तदर्थत्वाद्) इस कर्म को पितरों की प्रीति के अर्थ होने से, यह गाणगारिनामक आचार्य्य का मत है ।

(मनुजीने भी अ०३ श्लो०२२०में यह पक्ष अनुमोदित किया है०)

सू० सर्वेभ्य एव निष्ठणीयादिति तौल्यलिः क्रियागु-  
णत्वाद् २--६--१७-

१ पिण्डप्रदान से जीवित्पुरुषों की वृत्ति का असंभव होने से सब के प्रांत पिण्ड प्रदान न करे किन्तु जो पितृ आदिपों में से मृत हैं उन के प्रति पिण्डप्रदान करे औ जीवतों के प्रति साक्षात् भोजन प्रदान करे ।

\* “ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषा मेव निर्वपेद्, विषमवद् वाऽपि तं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेद्” अर्थात्—यदि श्राद्धहर्ता का पिता जीवत् हो तो पिता मह प्रपितामह को ही पिण्डदान करे औ उन्हीं के नाम से ब्राह्मणों को भोजन करावे जीवत् पिता के नाम से कुछ न करे, अथवा ब्राह्मणों की तरह जीवत्पिता को भी प्रत्यक्ष भोजन करावे ।

अन्वया० सर्वेभ्यः=मृतेभ्यो जीवद्भ्यश्च पित्रादिभ्यस्त्रिभ्यो, निपृणीयाद्=पिण्डान्येव दद्याद्, क्रियायामुद्देशकारकत्वे न पितृणां गुणभूतत्वाद्, न तेषां प्रीतिः शास्त्रतो लोकतो वा स्वगम्यते, इति तौल्यलिर्मन्यते ।

भाषा—( सर्वेभ्यएव ) पितृआदिक तीनों में जो मृत हैं औ जो जीवत् हैं उन सब के प्रति ही ( निपृणीयाद् पिण्डप्रदान करे क्योंकि ( क्रियागुणत्वाद् ) पिण्डदान रूप क्रिया में पितृ आदि को गुणभूत होने से, यह तौल्यलि आचार्य का मत है ।

सू० अपि जीवान्त आ त्रिभ्यः प्रेतेभ्य एव निपृणी-

यादिति गौतमः क्रिया ह्यर्थकारिता--२--६--१८

अन्वया० आदिमध्यान्त शब्दैःपितृ-पितामहप्रपितामहा उच्यन्ते, जीवोऽन्तो यस्य स जीवान्त, एवं जीवमध्यः जीवादिः जीवसर्व, त्रयाणामेकस्मिन् द्वयोः वा सर्वेषु जीवस्तु यावदर्थपरान् पितृन् गृहीत्वा प्रेतेभ्यस्त्रिभ्यो दद्याद् हि त्रयत इयं क्रिया मरणपदार्थप्रवृत्ता, इति गौतमो मन्यते ।

भाषा—( जीवान्तः ) जिस का अन्तका अर्थात् प्रपितामह जीवना हो<sup>१</sup> अथवा जिस का आदि पिता=जीवता हो

१ कुछ जीवत् की वृत्ति अपेक्षित नहीं है किन्तु विधिपूर्वक क्रिया की पूर्ति, एव च पितृ आदि तीनों में से चाहे कोई जीवत् हो चाहे मृत हो सब के प्रति पिण्डप्रदान करे प्रत्यक्ष नहीं ।

२ अन्तशब्द आदि मध्ययोरुपलक्षणं तदेवाह "आदिमध्यान्त" इत्यादि ना ।

३ अन्त नाग = अन्तले प्रपितामह का है, अन्त शब्द को उपलक्षण जानकर आदि-मध्य का भी ग्रहण कर लेना इसी से कहा है ( अथवा ) इत्यादि ।

अथवा जिस का मध्य=पितामह जीवता हो अथवा सभी जीवते हों ( अपि ) वह भी ( आत्रिभ्यः ) पित्रादि तीन को वर्ज कर जो उन के परे 'प्रेत' हैं तिन के प्रति पिण्ड प्रदान करे क्योंकि ( हि ) जिस हेतु से ( क्रिया ) यह पिण्ड-यज्ञरूप क्रिया ( अर्थकारिता ) मृत पुरुषों के अर्ध ही कियी जाती है कुछ जीवतों के अर्थ नहीं ।

इस प्रकार अन्य मुनियों के मत को उपन्यास कर इदानीं निर्णयार्थ उपक्रम करते हैं ।

सू० उपायविशेषो जीवमृतानाम् २—६ १९

भाषा—( जीवमृतानाम् ) जीवत् वा मृत पितरों को किस प्रकार पिण्डदान करना चाहिये इस में उपाय विशेष कथन करते हैं, तहां प्रथम उपन्यस्त पक्षों को अनभिमत कहते हैं, सू० न परेभ्योऽनधिकाराद् न प्रत्यक्षं न जीवेभ्यो

निष्ठणीयाद् २—६—२०

गौतम-गाणगारि तौल्वलीनां क्रमेण दूषणानीमानि ।

भाषा—( परेभ्यः ) प्रपितामह से परों को लेकर जो गौतम जी ने कहा था सो ( न ) समीचीन नहीं क्योंकि ( अनधिकाराद् ) विधि के अभाव से योग्यता का अभाव होने से, ( न प्रत्यक्षम् ) इस से गाणगारि के मत को असं-

१ अर्थात्—जिस का पिता जीवत् हो वह पितामह औ प्रपितामह तथा प्रपितामह के पिता को पिण्डप्रदान करे औ जिस के पिता पितामह दोनों जीवत् हो वह प्रपितामह तथा प्रपितामह के पिता औ पितामह के प्रति दान करे औ जिस के तीनों ही जीवत् हो वह आगे के तीनों के नाम से करे परन्तु करे तीन पिण्ड प्रदान अवश्य ।

गत कहा, औ “ न जीवेभ्यः ” इस से तौल्वलि के मत को असमीचीन कहा ।

सू० न जीवान्तर्हितेभ्यः । २-६-२१

जीवव्यवहितेभ्योऽपि न निपृणियाद् इत्यर्थः, सर्वव्यापीदं दूषणम्, सर्वत्राऽनधिकारादिति हेतुः ।

भाषा—जीवत् पित्रादि के व्यवधान वाले जो मृत हैं उन के प्रति भी न करे, क्योंकि “ जीवन्तं नातीयाद् ” इस निषेध से उन के प्रति अधिकार का अभाव है । तो फिर क्या करे इस आकाङ्क्षा होने पर सिद्धान्त कहते हैं—

सू० जुहुयाज् जीवेभ्यः । २-६-२२

( जीवेभ्यः ) जीवत् पुरुषों के अर्थ होम करे, अर्थात्—पितृ आदि तीनों में से जो जीवते हों उन के नाम से पिण्डों का अग्नि में हवन करे औ जो मृत हैं उन के नाम से रेखा पर बिछी हुया दर्भ पर पिण्ड रखे ।

सू० सर्वहुतं सर्वजीविनः २-६-२३

सर्वजीविना सर्वे पिण्डा होतव्या इत्यर्थः,—

अर्थात्—जिस के पिता आदि तीनों ही जीवते हों वह तीनों ही पिण्डों का होम करे<sup>१</sup> ।

१ सब मतों की असंगतता में ( अनधिकाराद् ) यह हेतु है, विधि के अभाव से वा निषेधसत्त्व से योग्यता का अभाव है, यह हम का अर्थ है, तदां ( जीवन्तं नातीयाद् ) यह निषेधक वाक्य है, अर्थात्—जीवत् को उल्लङ्घन कर पिण्डप्रदान मत करे ।

२ जिस का पिता जीवता हो वा पितामह जीवता हो वा दोनों जीवते हों वह केवल होम पर्यन्त ही पितृयज्ञ करे वा आरम्भ ही न करे, यह यहाँ पर तत्त्व है, इसी से ही ( होमान्तं वा ) यह शङ्खायनमुनि ने कहा है ।

सू० नामान्यविद्वाँस्ततः पितामहं प्रपितामहेति २-६-२४

भाषा—यदि अपने पिता आदि का नाम परिज्ञात न होय तो तत-पितामह-प्रपितामह ऐसेही उच्चारण कर पिण्ड प्रदान करे ।

इति द्वितीये पृष्ठी कण्डिका—

सू० निपृताननुमन्त्रयेत्, “अत्र पितरो \* मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम्” इति, २-७-१

निपृतान्-इति प्राप्ते निपृतानिति द्वान्दसम् + कर्मणि कृते पश्चात् तत्कर्मकरणमन्त्रोच्चारणमनुमन्त्रणम् ।

भाषा—( निपृतान् ) दर्भ ऊपर स्थापित पिण्डों को (अनुमन्त्रयेत्) अनुमन्त्रण करे अर्थात्—अत्र ‘पितरः’ इत्यादि मन्त्र का जप कर प्रार्थना करे, ( हे पितरो हर्षपूर्वक इन पिण्डों को भक्षण करो ) कर्म करने के अनन्तर तिस कर्म के करण भूत मन्त्र के जप करने का नाम अनुमन्त्रण है, अतएव शतपथ में २-३-४

\* यजु० अ० २ मं० ३१ पूर्वाद—“ हे पितरो यध्वम् ( अत्र ) बर्हिषि ( मादयध्वम् ) हृष्टा भवत, ( यथा भागम् ) यो यस्य भागस्तमनतिक्रम्य ( आवृषायध्वम् ) वृषा इवाचरत-महन्भिर्ग्रासैरतान् पिण्डानश्नीत् ” । अर्थात्—हे पितरो आप ( अत्र ) इस दर्भ के ऊपर ( मादयध्वम् ) हर्षपूर्वक स्थित होवो आ ( यथा भागम् ) जो जिस का भाग है उस को न उल्लंघन कर ( आवृषायध्वम् ) वृष ( बैल ) की तरह पर आचरण करो अर्थात्—वृष की तरह महान् ग्रामों द्वारा इन पिण्डों को भक्षण करा ।

† निपृतानिेव पिण्डाननुपंत्रयने न हुतानित्येवमर्थं निपृतानिति, तेन सर्वे होमे इदमनुमन्त्रणं न भवतीति, बोध्यम् ।

“तत्र जपति अत्र पितरो मादयध्वं यथा भाग-  
मावृषायध्वमिति यथाभागमश्नीतेत्येवैतदाह” २०

इस श्रुति से यहां पर जप का विधान किया है ।

यद्यपि यहां पर पिण्डों का ही अनुमन्त्रण, उपस्थान तथा प्रवाहण विधान किया है तथापि मन्त्रों को पितृलिङ्ग-  
वाले होने से पिण्डों को ही पितर जान कर इन मंत्रों से  
पितरों का ही अभिधान जानना ( उपस्थान अग्रिम सूत्र में  
औ प्रवाहण ६ सूत्र में है )

सू० सव्यावृद्धुदङ्ङावृत्य यथाशक्त्यप्राणनासित्वा  
ऽभिषर्ग्यावृत्य “अमीमदन्त पितरो † यथा-  
भागमावृषायिषत” इति—२-७-२

अ० अनुमन्त्रयेदिति शेषः, सव्येनाङ्गेनावर्तमानः सव्यावृदि-  
त्युच्यते, यथाशक्त्यनुच्छसन् आसित्वा पुनरभिषर्ग्यावृत्य  
(अमीमदन्त) इत्येवमनुमन्त्रयेद् इत्यर्थः ।

भाषा—(सव्यावृद्) सव्य अङ्ग से आवर्तमान हुवा,  
(उदङ्ङावृत्य) उत्तर की तरफ आवृत्ति कर अर्थात् उत्तर  
मुख हो कर (यथाशक्तिअप्राणन् आसित्वा) शक्ति के अनु-  
सार स्वास को रोक कर यत्किञ्चित् काल स्थित होकर फिर

१ (यथाभागमावृषायध्वम्) इस मंत्रभाग का (यथाभागमश्नीते) यह  
विवरण है ।

† जिन पितरों के प्रति यह कहा था कि आप हर्षपूर्वक पिण्ड भक्षण  
करों वह पितर अब हर्षयुक्त हुए पिण्डों का भक्षण कर चुके, यह इस मंत्र  
का भाव है ।

(अभिपर्यावृत्य) पिण्डों के सन्मुख होकर (अमीमदन्त) इत्यादि मंत्र का जप करे ।

अर्थात्—जिस समय पितर लोक पिण्डभक्षण करें उस समय पिण्डों की ओर दृष्टिपात न करे किन्तु सव्य अंग से आवर्तन कर उत्तरमुख हो कर प्राणायाम करे फिर जब भोजन कर लें तब पिण्डों की ओर मुख कर (अमीमदन्त) इत्यादि मंत्र का जप करे ।

भोजन के समय पितरों की ओर दृष्टिपात न करे, इस में क्या कारण है वह शतपथ में कहा है, तथाहि—

“अथ पराङ् परावर्तते, तिर इव वे पितरो मनुष्येभ्यः, तिर इव वे तद् भवति, सवै आतमितोरासीते-  
त्याहुः, एतावानेव ह्यसुरिति, स वै मुहूर्तमेवासित्वाऽथो-  
पपल्यय्य जपति (अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृ-  
पायिपतेति यथाभागमाशिपुरित्येवैतद् आह”

२-३-४-२१

भाषा—(अथ) हे पितरो तुम हर्ष पूर्वक भोजन करो इस अर्थ वाले ( अत्र पितरोमादयध्वम् ) इस मंत्र जप से अनन्तर (पराङ् परावर्तते) पिण्डापेक्षया पराचीनो यथा भवति तथा, उपविष्ट एवाऽप्रदक्षिणं भ्रमन्निव गच्छति, अर्थात्—बैठा

१ यजु० अ० २ मं० ११ उत्तरार्द्ध, ( यथाभागमावृपायिपत ) इस मंत्र भाग का ( यथाभागमाशिपुः ) यह विवरण है अर्थात्—यथाभाग आप लोकों ने पिण्डभक्षण किया ।

हुवा ही भ्रमण कर उत्तर की तरफ मुख करे, क्यों उत्तर मुख होवै, इस पर कहते हैं कि (तिर इव वै पितरो मनुष्येभ्यः) अर्थात्--भोजन करते हुये पितर लज्जायुक्त होकर मनुष्यों से तिरोभाव की इच्छा करते हैं (अपने आप को छिपाया (१) चाहते हैं) इस से ( तिर इव वै तद्भवति )

अर्थात्—उत्तर मुख होने से वह यजमान पितरों को तिरोहित करता है, कितनी देर तक उत्तर मुख स्थित होवै, इस पर कहा है कि ( आतमितोः ) अर्थात्—स्वासनिरोध-जन्य पीडा के होने पर्यन्त, क्योंकि ( एतावानेव ह्यसुः ) अर्थात्—श्वास के रोकने से अनन्तर जो पीडा होती है तहां पर्यन्त ही पुरुषों का जीवन है अधिक नहीं, इस प्रकार एक मुहूर्तपर्यन्त उत्तर मुख स्थित होकर फिर (उपपल्यय्य) पिण्डों के सन्मुख दक्षिण मुख होकर (अमीमदन्त इत्यादि मंत्र का जप करे+ इसी प्रकार तैत्तिरीय ब्राह्मणमें कहा है, “पराङ्मुखावर्तते ५ ह्रीका हि पितरः औष्मणो (१) व्यावृत उपास्ते ऊष्मभागा हि पितरः ”

पट. १ पञ्चा. १ पट. १०

(१) अर्थात्—जैसे लोक में पूजनीय प्रभु भोजन करने के समय में किसी के दृष्टिगोचर नहीं होते हैं तैसे पूजनीय पितर भी पिण्डभक्षण काल में अन्य की दृष्टि का अभाव चाहते हैं ।

+ राणायणीयसूत्रकार गोभिलाचार्य ने तो उत्तर से दक्षिण की ओर भ्रमण करने के समय में ( अमीमदन्त ) इस मंत्र का जप कहा है, शाखाभेद से सभी समीचीन है ।

(\*) योंपि पिण्डेषूपमा निर्गच्छति तस्य व्यावृत=उपरमः, आऊष्मणः व्यावृतः,= पिण्डं, उपासनं मय्यादीकृत्येत्यर्थः ।



अर्थात्—जिस हेतु से पितर ( द्रुमीकाः ) लज्जायुक्त हैं इस से उन के भोजन के समय उत्तर मुख हो कर स्थित होवें, कितनी देर तक स्थित होवें इस पर कहा है कि (ओ-प्मणोः व्यावृत्तः) अर्थात् जब तक पिण्ड उष्ण रहें क्योंकि पितर लोक उष्ण अन्न के ही भागी होते हैं शीत के नहीं ।

सू० चरोः प्राणभक्षं भक्षयेद्-२-७-३

भाषा—पिण्डों से अवशिष्ट स्थाली में स्थापित जो अन्न है वह चरु कहा जाता है, तिस चरु को ( प्राणभक्षं ) नासिका से वहन शील प्राण द्वारा जैसे भक्षण होय तैसे ( भक्षयेद् ) भक्षण करे, अर्थात्—स्थाली में पड़ा हुवा जो पिण्डों से अवशिष्ट अन्न है तिस को नासिका से अवघ्रात करे अर्थात् सूंघे,

आपस्तम्बीय श्रौत सूत्र में भी

(यःस्थाल्यां शेषस्त मवजिघ्रति')

इस वाक्य से पिण्ड शेषका अवघ्राण कहा है, वेद में भी विचार पूर्वक अर्थवादद्वारा पिण्ड शेष अन्न के अवघ्राण का विधान किया है—तथाहि—

※ ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्राश्यां ३ न प्राश्यां ३मुदिति,

१ मथप प्रश्न दुर्नी० पटल ९ क १२ सू० अर्थात्—स्थाली में जो शेष अन्न है उस का अवघ्राण करे, आपाण अवघ्राण सूंघने दो कहते हैं,

※ तैत्तिरीय ब्राह्मण-१-३-१०

२ प्राश्यादमुं दृष्टिं कृतं विचारार्थः, प्राशनपक्षे धीजभक्षणवदनपिस्थाभावान् हावितो यजमानो भ्रियेत अपाशने तु सर्वत्र दृष्टिशेषस्य भक्षणदर्शनाद् इदं इतिरेव न स्याद् अताप पितृभ्यो पिच्छिद्यतानां दोषद्वयपरिहाराय पात्रगतम-  
भपवजिघ्रेत् तदवघ्रात माशितं न भवति निगमनाभावाद्, अमाशितमपि न भवति तर्दायगन्धस्यान्तः प्रवेशाद् इत्यर्थः ।

येत्प्राश्नीयाजं जन्यमन्नमद्यात् प्रमायुकः स्याद्, यन्न  
प्राश्नीयाद् अहविः स्यात् पितृभ्य आवृथ्येतेति अव-  
घ्रेयमेव तन्नैव प्राशितं नैवाप्राशितम् ” इति,

भाषा-ब्रह्मवादी लोक निर्णय के लिये यह विचार करते  
हैं कि ( प्राश्यं न प्राश्यम् ) अर्थात्-पिण्डशेष अन्न का  
भक्षण करना चाहिये वा न भक्षण करना चाहिये, तहां  
यदि भक्षण किया जायगा तो बीज भक्षण प्रयुक्त अन्य  
अन्न के अभाव से यजमान क्षुधा से ( प्रमायुकः ) मृत हो  
जायगा (१) औ यदि नहीं भक्षण किया जायगा तो वह हवि  
न होने से पितरों को नहीं पहुंचेगा, इस से दोनों दोषों  
के परिहारार्थ उस अन्न का अवघ्राण करे क्योंकि सूंघना जो  
है वह निगरण \* का अभाव होने से न तो भक्षण ही कहा  
जाता है औ तिस की गन्ध का भीतर प्रवेश होने से न  
वह अभक्षण ही कहा जाता है किन्तु भक्षण के तुल्य अ-  
भक्षण है इससे हवि बनाने के लिये अवश्य उस अन्न को सूंघे ।

सू० नित्यं निनयनम्—२-७-४

(१) अर्थात्—स्थाली में जो शेष अन्न है वह पिण्डों का जनक होने से  
बीज के समान है एवंच जैसे लोक में खेत में बोनेवाले बीजों को भक्षण करने  
वाला कृषीवल अन्य नये अन्न की उत्पत्ति के अभाव से क्षुभ पीडित दशा  
में आता है तैसे यह यजमान भी बीज भक्षण से मर जायगा इस से बीज  
के समान पिण्ड शेष अन्न को भक्षण न करे, एवं अन्यत्र सर्वत्र वैदिक कर्मों में  
हवि के शेष भाग का भक्षण दृष्ट है तो यदि यहां पर भक्षण न किया जायगा  
तो इस अन्न को हवि रूप न होने से यह पिण्ड पितरों को प्राप्त न होगा ।

\* (निगरण) गले के अधोभाग में अन्न के संयोग होने का नाम निगरण है।

२ इसी संहि लोक में ( आघ्राणचार्द्ध भोजनम् ) यह कहते हैं, जो कि

भाषा—(नित्यं) अवश्य (निनयनम्) पिण्डों पर जल गेरे  
 अर्थात्—जैसे पहिले ( शुधन्तां पितरः ) इत्यादि तीन मंत्र  
 पढ़ कर रेखा पर तीन बार जल गिराया था उसी प्रकार  
 इस समय भी करे, अर्थात्—जैसे लोक में भोजन से पूर्व  
 औ भोजन से अनन्तर हस्तशोधन किये जाते हैं तैसे यहां  
 पर भी जो प्रथम जल गेरा था वह भोजन से पूर्व हस्त  
 शोधनार्थ था औ जो इस समय जल का गिराना है वह  
 भोजन से उत्तर काल में हस्त शोधनार्थ है, इस लिये दो  
 बार जल का प्रदान करना लगता है, क्या उच्चारण कर, जल  
 का प्रदान करे इस का निर्णय शतपथ में है तथाहि  
 “अथोदपात्रमादायावनेजयति, असाववनेनिक्ष्वेत्येवं  
 यजमानस्य पितरम्—असाववनेनिक्ष्वेतिपितामहम्,  
 असाववनेनिक्ष्वेतिप्रपितामहम्—तद् यथा जक्षुपेऽ  
 भिषिञ्चेदेवंतद् इति, २-५-४

अर्थात्—जैसे ( जक्षुपे ) कृतभोजन के प्रति हस्त शोधनार्थ  
 भृत्यलोक जल देते हैं तैसे उदपात्रमांदाय ) जलपात्र कम-  
 ण्डलु को लेकर पितरों के प्रति अवननेजन करे ।

शौनक आर्षवेग सूत्र में, तथा पिण्डादश्चाद् कला में तथा शालंकायन मुनि ने  
 ( उदपात्रमांदायिदपात्रमांदायानामित्यन्नेन प्रमथ्यं परिविकरणम् ) इत्यादि से  
 शेष अन्न का विकरण कहा है वह पार्वण आद्य में जानना ।

१ इत्य शोधनार्थ जल प्रदान करे, तहां इतना विशेष है कि जो पूर्व जल  
 का प्रदान किया है उस का नाम अवननेजन है औ जो अब पिण्ड भक्षण में  
 पश्चात् जल प्रदान किया है इस का नाम मत्स्यवनेजन है औ कहीं पर दोनों  
 बोधी अवननेजन कहा है परन्तु पूर्व के १४ इस सूत्र में ( त्रिरदकम् ) इस प्रकार  
 त्रि-पद का उपादान होने से अवननेजन औ मत्स्यवनेजन तीन बार करे, लोक में  
 भी यही रीति दृष्ट है ।

सू० असावभ्यङ्क्षासावङ्क्ष्वेति पिण्डेष्वभ्य-  
ञ्जनाञ्जने-२-७-५-

भाषा—हे ० देवदत्तशर्मन् पितः, त्वम् ( अभ्यङ्क्ष्व )  
इत्यादि प्रकार से पितृ आदि का नाम उच्चारण कर (पिण्डेषु)  
पिण्डों के ऊपर (अभ्यञ्जन) अवटन दे औ ( हे पितः अ-  
ङ्क्ष्व ) इत्यादि उच्चारण कर अञ्जन दे, परन्तु ( अञ्जनाक्ताः  
शलाकाः प्रतिपिण्डं निदधाति ) इस मैत्रायणीयपिण्डपितृ-  
यज्ञसूत्र से दर्भशलाका के अग्रभाग में लगा कर अञ्जन  
देना ।

सू० वासो दद्याद्दशामूर्णास्तुका वा पश्चाशद्-  
वर्षताया ऊर्ध्वं स्वलोम (एतद्वः पितरो वासो मानोऽतो  
ऽन्यत् पितरो युङ्गध्वम् ) इति-२-७-६ ।

(एतेषामन्यतमं द्रव्यं वासोर्ध्वं पिण्डेषु दद्याद् ।)

भाषा—(एतद् वः पितरो वासः) इस मंत्र को उच्चारण  
कर (वासो दद्याद्) पिण्डोंके ऊपर पितरों के अर्थ वस्त्र प्रदान  
करे, कौन वस्त्र दे, इस पर कहा है कि (दशाम्) अर्थात् वस्त्र  
के अन्त का प्रदेश, अथवा (ऊर्णास्तुका) अर्थात् भेड़ी के  
रोम, औ यदि यजमान ( पश्चाशद्वर्षतायाऊर्ध्वं ) अर्थात्

( \* ) सूत्र में ( अतो ) यह पद संबुद्ध्यन्त पितृपितामहादि का बांधक  
है, इस आशय से कहते हैं ( हे ) इत्यादि, ( अभ्यङ्क्ष्व ) अवटन लगाओ  
( अङ्क्ष्व ) अञ्जन करो ।

( ? ) पितृ आदि—इस आदि पद से पितानह औ पितामह का ग्रहण  
करना ।

पचाशवर्ष से अधिक आयुवाला होवे तो ( स्वयंलोम ) अर्थात् अपने रोम दे, यद्यपि यहां पर सामान्य से ही लोमप्रदान कहा है तथापि “ऊर्द्धं वै पुरुषस्य नाभ्यै मेध्यमत्राचीनममेध्यम्” इस श्रुति से औ (पचाशत ऊर्द्धमुरोलोम यजमानस्यै) इस शाक्यायनि मुनि के वचन से नाभि के ऊपरले भाग में उरस्थल के लोम लेने ।

यह दशा प्रदान आदि क्यों करना चाहिये इस का प्रयोजन वेद में कहा है तथाहि—“वीरं वै वा पितरः प्रयन्तो हरन्ति, वीरं वा ददति, दशां छिनत्ति, हरणभागा हि पितरः, पितृनेव निरवदयते, उत्तर आयुपि लोम छिन्दीत, पितृणां ह्येतर्हि नेदीयः” य. वे. भा. १।१।१।११।

अर्थात्—जिस समय पितर लोक पिण्डभक्षण कर (प्रयन्तः) गमन करते हैं उस समय यजमान के (वीरं हरन्ति) वीर पुत्र का हरण करते हैं अथवा ( वीरं ददति ) वीर पुत्र का प्रदान करते हैं, अर्थात्—यदि साङ्गोपाङ्ग पितृयज्ञ का अनुष्ठान किया जाय तो यजमान के प्रति पुत्र का प्रदान

( १ ) नाभि से ऊपर का भाग ( मेध्य ) पवित्र है, औ नीचे का भाग अपवित्र है यह श्रुति का भाव है ।

( २ ) पचाश वर्ष से अधिक वय वाला यजमान ( उरोलोम ) हृदयस्थ रोम का प्रदान करे, वोनायन मुनि ने तो (ऊर्द्धं पट्टाष्टिभ्यश्च वर्षेभ्योऽष्ट्रभ्यश्च मासेभ्यः ) इस वाक्य से आठमास अधिक ६६ वर्ष से ऊपर आयुवाला यजमान लोमप्रदान करे यह कहा है ।

( ३ ) यहां पर ( वासः ऊर्णा दशां दाऽभ्युक्ष्य पिण्डदेशे निदधाति ) इस मानसमैत्रायणीयपिण्डपितृयज्ञसूत्र के अनुसार मोक्षण कर दशा आदि का प्रदान करना यह भी जानो ।

करते हैं औ यदि अङ्गहीन यज्ञ अनुष्ठान किया जाय तो यजमान के पुत्र को मार देते हैं, सो साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान होना दुष्कर है इस से पुत्र की जगह में पितरों के लिये (दशां छिनत्ति) वस्त्र का अग्र भाग छेदन कर प्रदान करे क्योंकि पितर जो हैं वह (हरणभागाः) अपहरण को सेवन करने वाले हैं अर्थात्—कुछ ले कर ही जाने वाले हैं, इससे (पितृन् निरवदयते) वस्त्र के शेषभाग दान से पितरों को विसर्जन करे, अथवा (उत्तर० आयुषि) यदि यजमान पचाश-वर्ष से ऊपर आयु वाला होवै तो अपने ( लोम छिन्दीत ) हृदय के लोम छेदन कर देवै, क्योंकि ( एतर्हि ) इस वृद्ध अवस्था में यह पुरुष आसन्नमरण+ होने से (पितृणां नेदीयः) पितरों के समीपवर्ती होने वाला है ।

सू० अथैतानुपतिष्ठेत नमोवः पितर इषे, नमो वः पितर ऊर्जे, नमोवः पितरः शुष्माय, नमो वः पितरो घोराय, नमो वः पितरो जीवाय, नमो वः पितरो रसाय, स्वधा वः पितरो नमोवः पितरो नम, एता

(\*) (इससे आयुषि) शतवर्ष के परिमाण से पचाशवर्ष आयुका पूर्व भाग है औ पचाश वर्ष से आगे आयु का उत्तर भाग है, इसी आशय से सूत्रकारों ने पचाश वर्ष से ऊपर कहा है ।

(†) आसन्नमरण=समीपमरण वाला ।

(१) अर्थात्—समीप मरण वाला होने से यह भी अत्र अल्प काल में पितर बनने वाला है, वस्त्र का अग्र भाग भी श्वेत है औ ऊर्णा भी श्वेत है इस से रोम भी श्वेत होने चाहिये इसलिये पचाश वर्ष से अधिक आयु वाले के प्रति ही रोम प्रदान की आज्ञा है न्यून आयु वाले के प्रति नहीं, यह भी जानो ।

युष्माकं पितर इमा अस्माकं जीवा वो जीवन्त इह सन्तः स्याम २-७-७ ।

भाषा—(अथ) वस्त्रप्रदान से अनन्तर (नमो वः पितर इमे) इत्यादि मंत्रों का उच्चारण कर (एतान्) इन पितरों को (उप तिष्ठेत) अञ्जलि दान्ध कर प्रणाम करे ।

शब्दपथ में तो २-४-५ ।

\* “अथ नीविमुद्वृह्य नमस्करोति पितृदेवत्या नीविः तस्मान्नीविमुद्वृह्य षट्कृत्वो नमस्करोति, षट् वा ऋतवः ऋतवः पितरः तस्मात् षट्कृत्वो नमस्करोति” २२ इस वाक्य से ‘नमो वः पितरो रसाय’ ।

(\*) ‘अथ’ अवेष्टनादि से अनन्तर (नीविमुद्वृह्य) यामवृक्षा में जो अन्नरीय रस दशा है तिस का नाम नीवि है तिस को उन्मोचन (खोल) कर पितरों को नमस्कार करे, जिस हेतु से यह नीवि पितृदेवतावाली है इससे उस को खोल कर ६ छवार नमस्कार करे ६ छ ही ऋतु हैं औ ऋतु रूप ही पितर हैं इससे षट्बार नमस्कार करे, “ऋतवः खलु ये देवाः पितरः” इस तैत्तिरीय-धुति में भी पितरों को ऋतुरूप कहा है । (१) अत्र ऋतुओं के नाम से युक्त जो षट् नमस्कारमंत्र हैं उन का उपन्यास करते हैं, (नमो वः पितरो रसाय) इत्यादि-गन्-अ-२-म-१२-— तहां बगन्त ऋतु में मधु आदि रस या प्रादुर्भाव होनेसे रस पद से वसन्त ऋतु लेना, औ पथियों के शोष या कारण होने से शोष पद से ग्रीष्म ऋतु लेना, रसा द्वारा जीवन का हेतु होने से जीव पद से वर्षा ऋतु लेना, “रसायैशरत” इस धृति से स्वर्ण पद का शब्द ऋतु लेना, शीत द्वारा वः पद का होने से शीत पद से हेमन्त ऋतु लेना, औ मन्यु पद से शिशिर ऋतु लेना, अर्थात् ये पितरों षट् ऋतुरूप जो आप हो तिन के प्रति मेरा नमस्कार है, ६ छ पद में जो नमस्कार की पुनरुक्ति है वह आदर्श जाननी ।

नमो वः पितरः शोषायै, नमो वः पितरो जी-  
वायै, नमो वः पितरः स्वधायै, नमो वः पितरो घो-  
रायै, नमो वः पितरो मन्यवे, नमो वः पितरः पित-  
रो वः” ।

इस यज्ञ का उपस्थान में विनियोग कहा है ।

औ तैत्तिरीयब्राह्मण में—

“नमस्करोति, नमस्कारो हि पितॄणाम्, नमो वः  
पितरो रसाय, नमो वः पितरः शुष्माय, नमो वः  
पितरो जीवाय, नमो वः पितरः स्वधायै, नमो वः  
पितरो मन्यवे, नमो वः पितरो घोराय, पितरो नमो वः ”

इत्यादि प्रकार से उपस्थान कहा है । ( शाखा भेद से  
सभी समीचीन हैं । )

यहां पर “गृहान्नःपितरो दत्तेति गृहाणां हि पितरं इक्षते  
एष एतस्याशीः कर्मणः” इस शतपथ के प्रमाण से “गृहान्नः  
पितरो दत्तं सतो वः पितरो देष्म” इस मंत्र को पढ़ कर  
अपनी पत्नी की ओर वा गृह की ओर यजमान दृष्टिपात  
करे यह विशेष भी जान लेना ।

( १ ) जिस हेतु से गृह आदिकों के पितर ईश हैं इस हेतु से ( गृहान्नः  
पितरो दत्त ) इस को उच्चारण कर अपने गृह को देखे, यही पितृयज्ञरूप कर्म  
में मार्थना है, यह भाव है ।

( २ ) हे पितरो ! आप ( नः ) हमारे प्रति ( गृहान्न ) घर-पुत-कलत्र  
आदि ( दत्त ) प्रदान करो, औ ( सतः ) आप कर प्रदत्त होने से विद्यमान  
तिन गृहादिकों से ( वः ) आप के प्रति हम पितृयज्ञ द्वारा सत्कार प्रदान करें ।



एवं वक्ष्यमाणशाङ्खायन-कात्यायन श्रौतसूत्रों से—

“उज्ज्वं वहन्तीरमृतं \* घृतं पयः कीलालं परिशुतं  
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्” पृष्ठ. १०. १. ३०. १४।

इस को उच्चारण कर अपनेजनेशेष जो कमण्डलु में जल है उस को पिण्डों पर वा पिण्डों के समीप भूमिपर गिरावे ।

एवं ( अथावजिघ्रति † प्रत्यवधाय पिण्डान्, स यजमान भागः ) इस शतपथसे तथा वक्ष्यमाण शाङ्खायनादि श्रौत सूत्रों से तीनों पिण्डों को स्थाली में रखकर यजमान आघ्राण करे यह भी जान लेना ।

सू० मनोऽन्वाह्वामहे, इति च तिसृभिः-२-७-८

भाषा—(मनोऽन्वाह्वामहे) इत्यादि तीन ऋचों को पढ़ कर फिर पितरों का उपस्थान करे, अर्थात्—

“मनोऽन्वाह्वामहे नाराशंसेन स्तोमेन, पितॄणां च मन्मभिः” “आ न एतु मनः पुनः क्रत्ये दक्षाय

( \* ) हे जल ! अमृतरूप से घृत रूप से पयः=दुग्धरूप से कीलाल=मिष्टान्न रूप से ( परिशुत ) निःमृत दूध आप जो ( उज्ज्ववहन्तीः ) पुरुषों के प्रति अनेक प्रकार का पल प्रदान करते हैं सो आप स्वधारूप हो कर मेरे पितरों को तृप्त करा ।

† (अथ) नमस्कार से अनन्तर (विण्डान् प्रत्यवधाय) पिण्डों को स्थाली में स्थापन कर (अवजिघ्रति) नासिका से आघ्रात करे क्योंकि यह जो सूचना है सो यजमान का भाग अर्थात्—संस्कार है ।

(३) नाराशंस नामक (स्तोमेन) स्तोत्र से तथा पितरों कर ( मन्मभिः )

जीवसे, ज्योक् च सूर्ये दृशे” “पुनर्नः पितरो मनो  
ददातु दैव्यो जनः, जीवं व्रात सचेमहि”

यजु० च० १५१ ५४ ५५

इन तीन मंत्रों को पढ़ कर अंजलि बांध कर प्रार्थना  
करे ।

सू० अथैतान् प्रवाहयेत् (परेत नः पितरः सो-  
म्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्व्विणोभिः, दत्तायास्त्वभ्यं  
द्रविणेह भद्रं रथि च नः सर्व्वीरं नियच्छत) इति,  
२-७-९ ।

भाषा—(परेतनः) इत्यादि मंत्र को पढ़ कर पितरों का  
प्रवाहण अर्थात् विसर्जन करे ।

सू० अग्निं प्रत्ययाद् (अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः )  
इति—२-७-१० ।

माननीय स्तोत्रों से हम लोक (तु) शीघ्र ही (पनः) मन अभिमानी देवता का  
आवाहन करते हैं ।

(१) (ऋत्वे) यज्ञ के लिये (दक्षाय) चातुर्थ के लिये तथा (ज्योक्जीव से)  
चिरकाल पर्य्यन्त जीवन के लिये तथा सूर्य के दर्शनार्थ ( नः ) हमारा मन  
फिर (आप्तु) आगमन करे ।

(२) हे पितरो ! (दैव्योजनः) देवों कर माननीय जन (नः) हमारे प्रति  
मन का फिर प्रदान करे, जिस मन कर के हम लोकें (जीवव्रातम्) जीवतेहुये  
पुत्रादि समूह को (सचेमहि) सेवन करे ।

(३) हे पितर लोकों ! आप जिस गंभीर दक्षिण मार्ग से आये हो उसी  
मार्ग से फिर वहां गमन करो औ हमारे प्रति सुख औ धन तथा वीरपुत्रादि  
का प्रदान करा ।

भाषा—“अग्ने ॐ तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदि स्पृशं, ऋध्यामा त ओहेः” इस मन्त्रका उच्चारण कर दक्षिण मुख होकर (अग्नि) दक्षिणाग्निके प्रति (एयात्) गमन पूर्वक उपस्थित होय ।

सू० गार्हपत्यं (यदन्तरिक्षं) पृथिवीमुतं द्यां यन्मातरं पितरं वा जहिंसिम, अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु करोतु मामनेनसम्) इति २-७-११ ।

भाषा—( यदन्तरिक्षम् ) इत्यादि मंत्र को जप कर गार्हपत्य अग्नि का उपस्थान करे ।

सू० वीरं मे दत्त पितर इति पिण्डानां मध्यमम् २-७-१२

भाषा—( वीरं मे दत्त पितरः ) इस को उच्चारण कर पिण्डों में से (मध्यमम्) धीच के अर्थात्—पितामह के पिण्ड को यजमान ग्रहण करे ।

( \* ) यजु० अ० १५ । मं०-४४ यहाँ पर दोनों नकार उपमार्थ हैं, (न) जैसे ( अश्वम् ) अश्वमेध संवन्धी अश्व को ( स्तोमैः ) स्तुतियों से सम्प्रदियुक्त करते हैं औ ( न ) जैसे ( हृदिस्पृशं ) मन में होनेवाले ( भद्रं क्रतुम् ) शुभ संकल्प को मशाम्लोक समृद्ध करते हैं तैसे ( अद्य ) आज हम द्वे अग्ने ( ते ) आप के इस प्रसिद्ध यज्ञ को ( ओहैः ) आ समन्ताद् यदन्ति = त्यत्कर्म्मरूप-नामानि प्रतिपादयन्ति ये ते ओहाः अर्थात्—आप की प्रशंसा निरूपण पर स्तोत्रों से हम ( ऋध्यामा ) समृद्ध करते हैं ।

[ १ ] अन्तरिक्ष औ पृथिवी तथा स्वर्ग एवं माता पिता के प्रति जो मैंने ( जहिंसिम ) हिंसा सहज अपमान किया है ( तस्माद् एनसः ) तिस अपमानजन्य पाप से गार्हपत्यनामक अग्नि मुझ को मोचन करे, अर्थात्—मुझ को निष्पाप करे ।

[ २ ] हे पितरों ! आप मेरे प्रति क्षीर पुत्र का प्रदान करो ।

सू० पत्नीं प्राशयेद् “आधत्तपितरो” गर्भं कुमारं  
पुष्करस्त्रजं, यथायमरपा असद्” इति २-७-१३ ।

भाषा—तिस मध्य के पिण्ड को अपनी पत्नी के प्रति  
भक्षण करावे, अर्थात्—पुत्रकामनावाली यजमान की पत्नी  
(आधत्त) इत्यादि मन्त्रको पढ़कर उस पिण्ड को भक्षण करे।

मनुभगवान् ने भी “पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा,  
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक्सुतार्थिनी” इस वाक्य  
से मध्यमपिण्ड की यही गति कही है ।

सू० अप्स्रितरौ, अतिप्रणीते वा २-७-१४।१५।

भाषा—(इतरौ) इतर दोनों पिण्डों को (अप्सु) जल में

( १ ) यजु अ० २ मं० ३३ में तो (यथायमरपा) इसके स्थान में (यथह  
पुरुषः) यह पाठ है—हे पितरो ! (यथा) जिस प्रकार (इह) इस ऋतु में (पुरुषः)  
देवादिकर अपेक्षित अर्थ के पूरण करनेवाला पुत्र होय तिम प्रकार आप कुमार-  
रूप गर्भ के आधान का संपादन करो, कैसा कुपार हो कि पुष्करस्त्रजम् कम-  
लपुष्प की मालावाला होने से अति सुन्दर ।

( २ ) पितरों के पूजन में तत्पर जो पतिव्रता यजमान की पत्नी वह सुत  
की कामना वाली हुयी मध्यम पिण्ड को भक्षण करे, म० अ० ३ श्लो० २६२ ।

यहाँ पर “अन्यदेशगता पत्नी गर्भिणी रोगिणी तथा, तदा तं जीर्णवृषभः  
छागो वा भोक्तुमर्हति” वृहस्पतिः “ यदि पत्नी चिदेशस्था उच्छिष्टा यदि  
वा मृता, दुरात्मा नानुकूला च तस्य पिण्डस्य का गतिः, आकाशं गमयेत्पिण्डं  
जलस्थो दक्षिणामुखः, पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणा दिक् तथैव च,, इत्यादि  
वाक्यों से यह विशेष भी जान लेना कि यदि यजमान की पत्नी गर्भिणी वा  
रोगिणी होय तो वृद्ध बैल वा छाग उस पिण्ड को भक्षण करे, औ यदि पत्नी  
परदेश में हो वा उच्छिष्ट वा मृत वा दुरात्मा वा प्रतिकूल होय तो आकाश  
की तरफ पिण्ड को फेंक दे वा दक्षिणमुख हो कर जल में गेर दे क्योंकि  
आकाश तथा दक्षिणदिशा पितरों के निवास का स्थान है ।

फेंक दे ' वा ' अथवा अतिप्रणीत नामक अग्नि में फेंक कर दग्ध कर दे ।

सू० यस्य वाऽऽगन्तुरन्नकाम्याभावः स प्राश्नीयाद्  
२-७-१६ ।

भाषा—(वा) अथवा (यस्य) जिस पुरुष को (आगन्तुः) अकस्मात् ही अन्नकाम्याभावः) अन्न भक्षण की इच्छा का अभाव है अर्थात्—अजीर्ण रोग है सो पुरुष उन दोनों पिण्डों को (अश्नीयाद्) भक्षण करे ।

सू० महारोगेण वाभितप्तः प्राश्नीयादन्यतरां गतिं  
गच्छति २-७-१७ ।

भाषा—(वा) अथवा क्षय कुछ आदिक महारोग कर के जो (अभितप्तः) पीड़ित पुरुष है वह उन पिण्डों को भक्षण करे क्योंकि पिण्डभक्षण से वह पुरुष ( अन्यतरां गतिं गच्छति ) अर्थात्—या तो शीघ्र ही मर जायगा, औ या शीघ्र ही नीरोग हो जायगा ।

सू० एवमनाहिताग्निः, †नित्ये श्रपयित्वाऽतिप्र-  
णीते जुहुयाद् २-७-१८ ।

भाषा—( अनाहिताग्निः ) अग्नि के आधान से रहित पुरुष भी (एवम्) इसी प्रकार पिण्डपितृयज्ञ करे, अन्नआधान के अभाव से वह पुरुष चरुपाक औ होम किस अग्नि में

(१) अर्थात् इस पिण्डके भक्षण से अजीर्ण रोग की निवृत्ति होजाती है ।

(२) अर्थात् सर्वथा ही दुःखभाग से रहित होगा ।

(५) मयद्वयविद्विपति वंचित् ।

करेगा इस आकाङ्क्षा के कारणार्थ कहा है कि (नित्ये श्रपयित्वा) अर्थात्—औपासने अग्नि में चरु का पाक कर अति प्रणीत नामक अग्नि में हवन करे ।

सू० द्विवत् पात्राणामुत्सर्गः २-७-१९ ।

भाषा—(द्विवद्) दो दो करके पात्रों का (उत्सर्ग) त्याग करे<sup>२</sup> ।

सू० तृणं द्वितीयमुद्रित्ते २-७-२० ।

भाषा—( उद्रित्ते ) यदि मिला कर दो दो गेरने से एक पात्र अधिक हो जाय तो एक तृण मिला कर दो पूरे कर पात्रों का त्याग करे ।

हरिः, ओं, तत्तद् ।

+ इदानीं जिन श्रौतसूत्रों से शाङ्खायनमुनि ने पिण्डपितृयज्ञ का निरूपण किया है उन श्रौतसूत्रों का उपन्यास किया जाता है ।

सू० \*पिण्डपितृयज्ञोऽपराह्णेऽमावास्यायाम् ४-३-१ ।

(१) विवाह काल में हाँस का आधारभूत जो स्मार्त अग्नि है उसे औपासनाग्नि जानना । इसी अग्निमें उद्धृत कर जो दक्षिण की तरफ अग्नि स्थापन किया जाय वह अति प्रणीत जानना ।

(२) जो ध्रुवा आदि पात्र हैं उन को एक एक कर के मत फेंके किन्तु मिला कर दो दो गेरे ।

+ इस प्रकार ऋग्वेदीय आश्वलायन श्रौतसूत्रों से पिण्डपितृयज्ञ का निरूपण कर अब ऋग्वेदीयशाङ्खायन श्रौतसूत्रों से उसका निरूपण करते हैं, “इदानीं”, इत्यादि से ।

(\*) अमावास्या में अपराह्नकाल में पिण्डपितृयज्ञ का अनुष्ठान करे ।

सू० दक्षिणाग्नेः' पुरस्ताच् छूर्पे स्थालीं स्फ्यं पात्री-  
मुलूखलमुशले च संसाद्य, गार्हपत्यस्य पश्चाद् दक्षि-  
णाग्नेषु कुशेषु स्फ्यं निधाय, उपरिष्ठाद् ब्रीहीन् पात्र्या-  
म्, पुरस्ताच् छूर्पे स्थालीम्, आच्य सव्यं जानु-  
नीचा मुष्टिना ब्रीहीन् गृह्णाति पितॄन् ध्यायन्, यथा  
ऽधोविलाशृतः स स्यात्, २।३।४।५।६।७।

सू० पत्न्या सैकृत्फलीकृतान् दक्षिणाग्नीं श्रपयि-  
त्वाऽभिघार्य प्रत्यञ्चमुद्वास्यावसवि परिसमूह्य  
परिस्तीर्य पर्युक्ष्य दक्षिणं जान्वाच्य यज्ञोपवीती  
प्राङ्ङासीनो मेक्षणेन जुहोति ४—३—८ ।

(१) दक्षिणाग्निसे पूर्व ओर शूर्पे स्थाली आदि पात्रोंको स्थापन कर औ गार्हपत्य अग्नि से पश्चिम ओर दक्षिणाग्र कुशों के ऊपर स्फ्य नामक पात्र को स्थापन कर शूर्प में स्थाली को रख कर सव्य जानु को निवाय कर पितरों का ध्यान करता हुआ नीची मुष्टि से शकट पर से पात्री में ब्रीहियों का ग्रहण करे, इननी ब्रीहि ग्रहण करे जैसे हिलोरा देने से अधोविल द्वारा कुछ ब्रीहि शूर्प में गिर पड़े, यह इन छ सूत्रों का भाव है ।

(२) पत्नी कर एक बार फूट कर फली किये हुए उन धानों को दक्षिणाग्नि में पका कर फिर उस को अभिवारण औ उद्वासन कर फिर परिसमूहन परिस्वरण-पर्युक्षण कर दक्षिण जानु को निवाय कर यज्ञोपवीती हो कर मेक्षण से हवन करे ।

तमि दर्भों से अग्निस्थापन के स्थान को धूलि दूर करना परिसमूहन कहा जाता है, औ दर्भ से अग्नि को ईशानादि कोण से आछादित करना-मस्तरण जानना, जल से मोक्षण का नाम पर्युक्षण है ।

सू० अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृ-  
मते यमायाऽङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहेति—४-४-१ ।

सू० भिक्षणमनुप्रहृत्य दक्षिणा दक्षिणाग्नेः (अप-  
हृता असुरा रक्षांसि वेदिषद) इति स्फ्येनोन्मृज्याभ्यु-  
क्ष्य “ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया  
चरन्ति, परा पुरो नि पुरो ये भरन्त्यग्निष्टौल्लोकान्  
पूणुदात्यस्माद्) इत्युल्मुकमुन्मृष्टस्य दक्षिणार्धे निधाय  
मूले कुशान् सकृल्लूनानुन्मृष्टे निधाय (असाववनेनि-  
क्ष्य ये च त्वामत्रानु) इति पितुर्नामादिश्य कुशेष्वपो  
निषिञ्चति अवाचीनपाणिना, एवं दक्षिणतः पिताम-  
हस्य, प्रपितामहस्य च, असावेतत्ते ये च त्वा मत्रानु  
इति पिण्डान् यथावनेजितं निधाय २।३।४।५ ।

सू० उभावेकस्मिन् पितृभेदे, न जीवपितुरस्ति, न

(१) जिन मंत्रों को उच्चारण कर होम किया जाता है उन मंत्रों का उप-  
न्यास करते हैं ( अग्नये ) इत्यादि से ।

(२) भिक्षण को अग्नि में फेंककर (अपहृता) इत्यादि मंत्रसे दक्षिणाग्नि के  
दक्षिण ओर स्फ्य से एक रेखा निकास कर फिर अभ्युक्षण कर ( येरूपाणि )  
इत्यादि मंत्र को पढ़ कर रेखा के दक्षिणार्ध भाग में उल्मुक को स्थापन कर  
फिर रेखा के ऊपर सकृदाच्छिन्न कुशों को बिछाये औ जलसेचन कर उत्तान-  
हस्त से पिण्ड स्थापन करे औ स्थापन काल में ‘ असावेतत् ’ इत्यादि का  
उच्चारण करे इसी प्रकार ही मंत्र उच्चारण कर दक्षिण की ओर पितामह तथा  
प्रपितामह के प्रति पिण्डप्रदान करे ( यथावनेजितं ) जहाँ २ पर अयनेजन  
किया है वहाँ १ पर पिण्ड रखे, यह इन चार मूर्तों का भाव है ।

(३) यदि यजमान के दो पिता हों अर्थात्—एक साक्षात् पिता औ



जीवान्तर्हिताय, येभ्यो वा पिता तेभ्यः पुत्रः, होमान्ते वा ६।७।८।९।१० ।

सू० अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागं पितर आरुषा-  
यध्वम् इति, उदङ् पर्यारुत्य, त्रिरातमनादासित्वा,  
अमीमदन्त पितरो यथाभागमवीरुषतेति प्रतिपर्यारु-  
त्य, तथेवावनेज्य १३।१२।१३।१४।१५ ।

सू० नमो वःपितरो जीवाय नमो वःपितरः शोषाय  
नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो रसाय नमो  
वः पितरो वलाय नमो वः पितरो मृत्यवे नमो वः  
पितरो सन्यवे नमो वःपितरः स्वधायै नमो वःपितरः  
पितरो नमो वः\* येऽत्र पितरः स्थ यूयं तेषां श्रेष्ठा

एक गोद छेने से घर्म का पिता होय तो एक रेखा में दोरे पिण्ड स्थापन करे,  
परन्तु जिस का पिता जीवता होय वह पिता के नाम से पिण्ड मत रखे ।

एवं जीवत्पिता आदि के व्यवधानवाले जो अन्य मृतक हैं उन के प्रति  
भी पिण्डप्रदान मत करे, अथवा जिनो के प्रति पिता ने पिण्ड दिया है उन्हों  
के प्रति ही पुत्र पिण्ड प्रदान करे, अथवा जीवत् पिता बाला पुत्र होमपर्यन्त  
ही पिण्डपितृयज्ञ करे पिण्डप्रदान न करे, कर तो उन पिण्डोंका अग्निमेंही होम  
करे, यह विचार पूर्व स्पष्ट है इस से फिर लिखने की कुछ आवश्यकता नहीं  
यह इन पाँच सूत्रों का भाव है,

(१) पिण्डप्रदान से अनन्तर (अत्रपितर) इत्यादि मंत्र का जप कर फिर  
उत्तर की ओर पर्यारुर्ध्वन कर तीन प्राणायाम करण पूर्वक उहाँ पर निरास कर  
फिर दक्षिणमुख हो कर ( अमीमदन्त ) इत्यादि जप करे, फिर अवनेजन कर  
( नमोवः ) इत्यादि का जप करे ।

\* हे पितरों जो पितृलोक में अन्य पितर हैं उन में से श्रेष्ठ आप होवो

भूयास्थ य इह पितरो मनुष्या वयं तेषां श्रेष्ठा भू-  
यास्मया अत्र पितरः स्वधायुष्माकं सा य इह पितरः  
राधतु\* अस्माकं स गृहान्नः पितरोदत्तेति ४।५।१ ।

सू० एतद्वः पितरो वासो बध्वं पितर इति त्रीणि  
सूत्राण्युपन्यस्य, 'ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं  
परिष्कृतं स्वधा स्थ तर्पयत नः पितॄन्' इत्युदकशेषं  
निनीय, अवघ्राय पिण्डान्, अवधाय प्राशनीयात्, ब्राह्म-  
णाय वा दद्यात्, अपो वाऽभ्यवहरेत् २।३।४।५।६।७।

सू० मध्यमपिण्डं पत्नी पुत्रकामा प्राशनीयात्  
(आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्त्रजं यथेह पुरुषो  
ऽसद्) इति ८ ।

सू० उल्मुकमग्नौ कृत्वा, सकृदाच्छिन्नाननुप्रहत्या ९।१०

औ जो मनुष्य लोक में पितर हैं उन में से श्रेष्ठ हम होंगे, औ जो पितृमित्र  
स्वधा वह आप की होय औ जो इस लोक में समृद्धि है वह हमारी होय, हे  
पितरो आप हमारे प्रति यह पुत्र आदि का प्रदान करो ।

(\*) एधतु-इस पाठ में आर्ष औ वृद्धि अर्प जानना ।

(१) (एतद्वः) इत्यादि पद कर पिण्डों पर तीन सूत्र को रख कर फिर  
(ऊर्जम्) इत्यादि पद कर अग्नेजनशेष जल को वहां गिरा कर, पिण्डों को  
सूँघ कर, स्थाली में रख कर भक्षण करे वा ब्राह्मणों के प्रति प्रदान करे वा  
जल में फेंक दे यह ६ सूत्रों का भाव है ।

(२) पुत्र की कामना वाली यजमान की पत्नी (आधत्त) इत्यादि पद कर  
मध्यम पिण्ड को भक्षण करे ।

(३) उल्मुक को औ सकृदाच्छिन्न कुशों को अग्नि में फेंक कर पितृयज्ञ  
को समाप्त करे ।

सू० अग्निहोत्रः यवाग्वैव सायंप्रातः, स्वयं होमश्च  
पर्वणि ११।१२ ।

एतेनैव धर्मेणानाहिताग्नेः पिण्डपितृयज्ञः क्रियेत् . १. १. १२ ।

होमः, श्राद्ध, ओतत् सद् ।

( यजुर्वेदीयकात्यायनश्रौतसूत्राणि )

सू० +अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञश्चन्द्रादर्शनेऽम.वा-  
स्यायाम् ४।१।१

सू० दक्षिणाग्नौश्रपणं, होमश्च २।३ ।

सू० परिस्तीर्य्य तं पूर्ववत्पात्रासादनमेकशः, ४ अप-  
रेण गार्हपत्यं चरमपूर्णं सुचं वा तूर्णीं गृहीत्वोत्तरेण

(१) सायं औ प्रातः काल यवागु से अग्निहोत्र करे, औ पर्व में स्वयं आप ही यजमान होम करे (चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा, रविवार, संक्रान्ति, यह छ पर्व हैं ।

(\*) इसीप्रकार से अनाहिताग्निः=अग्नि के आधान से रहित भी पुरुष पिण्डपितृयज्ञ का अनुष्ठान करे ।

(†) चन्द्रमा के क्षय कर के युक्त जो अमावास्या है तिस में अपराह्ण के समय में पिण्डपितृयज्ञ करे ।

(२) दक्षिणाग्नि में चरु का पाक करे औ उसी में होम करे ।

(३) पूर्वोक्त पौर्णमास याग की तरह तिस अग्नि को कुशों से आच्छा-  
दित कर दक्षिणाग्निके उत्तर ओर स्फ्य आदिक एक २ पात्रों को स्थापन करे,  
गार्हपत्य से पश्चिम दिशा में (अपूर्ण) ब्रीहिकर न पूरित स्थाली वा  
सुग् को तूर्णीं ग्रहण कर फिर दक्षिणाग्नि से उत्तर ओर दक्षिणमुख स्थित  
होकर ब्रीहियों को कूटे, परन्तु कूटे हुये उन धान्यों को एक बार ही फटकारे  
बारंबार नहीं, यह उक्त सत्तों का भाव है ।

दक्षिणाग्निमवहन्ति तिष्ठन् ५ सकृत् फलीकरोति ६ ।

सू० सारतण्डुलमपूर्णं श्रपयित्वाऽभिघात्र्योद्वास्य  
मेक्षणेन जुहोति, अग्नय इति सोमायेति च ७ ।

\*प्राप्य तद्दक्षिणेनोत्लिखति (अपहता) इत्य-  
परेण वा ८ ।

सू० †उल्मुकं परस्तात्करोति (येरूपाणि) इति ९ ।

सू० ‡उदपात्रेणावनेजयति अपसव्यं सव्येन  
वोद्धरणसामर्थ्याद् (असाववनेनिक्ष्वेति) यजमानस्य  
पितृप्रभृतीन् त्रीन् १० ।

सू० §उपमूलं सकृदाच्छिन्नानि लेखायां कृत्वा

[ १ ] जैसे पके हुये चरु से स्याली पूर्ण न होय ऐसे गुपादिरहित उन तंडुलों को पका कर औ अभिघारण कर ( उद्वास्य ) दक्षिणाग्नि से उत्तर स्थापन कर (अग्नये) इत्यादि पद कर मेक्षण से तीन बार अग्नि में दहन करे ।

\* तिस मेक्षण को दक्षिणाग्नि में फेंक कर फिर अग्नि से दक्षिण वा पश्चिम की ओर 'अपहता' इत्यादि पद कर स्थल से एक रेखा निकासे ।

† ये रूपाणि—इस को पद कर रेखा से दक्षिण प्रदेश में उल्मुक स्थापन करे ।

(२) (असाववनेनिक्ष्व) यह पद कर यजमान अपने पिता पितामह मपितामह के प्रति कमण्डलु द्वारा अवनेजन करावे ।

( ३ ) मूल के समीप एक ही मयत्न से उत्पाटित कुशों को उस रेखा पर बिछाय कर जहाँ २ पर अवनेजन किया है तहाँ २ पर पिण्ड स्थापन करे, औ स्थापन करने के समय में असावेतत्ते यह उच्चारण करे, एके=कोई एक यह कहते हैं कि ( येचत्व मनु ) यह भी संग उच्चारण करे, यह दोनों मंत्रों का भाव है ।

यथावन्तिकं पिण्डान् ददाति (असावेतत्त) इति ११ ।

सू० ये च त्वामनु) इति चैके १२ ।

सू० अत्र पितर इत्युक्तोदङ्खास्ते आत्मनाद् १३ ।

सू० आचृत्य (अमीमदन्त) इति जपति १४ ।

सू० अवनेज्य पूर्ववन्नीविं विस्त्रंस्य ( नमो व )

इत्यञ्जलिं करोति १५ ।

सू० \* एतद् व, इत्युपास्यति सूत्राणि प्रतिपिण्डम् १६  
ऊर्णा दशा वा १७ । वयस्युत्तरे यजमानलोमानि वा १८

सू० ऊर्जमित्यपो निषिञ्चति १९ ।

सू० अवधायवजिघ्रति यजमानः २० ।

( १ ) अत्र पितरो मादयध्वम् इत्यादि पद कर उत्तर ओर मुख कर तीन माणायाम करे, फिर दक्षिण मुख होकर अमीमदन्त इत्यादि का जप करे, यह दोनों सूत्रों का भाव है ।

( २ ) पूर्व की तरह अग्नेजन कर नीवि को खोलकर ( नमोवः ) इत्यादि मंत्रों से छै बार प्रणाम करे ।

( \* ) ( एतद् वः पितरो वासः ) यह पद कर प्रत्येक २ पिण्डों पर तीन २ सूत्र स्थापन करे, या भेड़ी के रोम प्रदान करे, अथवा बल्ल की दशा का प्रदान करे, या पचाशवर्ष से अधिक अवस्थावाला यजमान होय तो अपनी छाती के रोम प्रदान करे, यह—१६ । १७ । १८ इन तीन सूत्रों का भाव है ।

( ३ ) ( ऊर्जं वहन्तीः ) इत्यादि को पद कर अवनेजनशेष जल को पिण्डों पर गेरे ।

( ४ ) पिण्डों को स्थाली में रख कर यजमान उन का आघ्राण करे, औ बल्लुक औ कुशों को अग्नि में फेंके, यह दोनों सूत्रों का भाव है ।

- सू० उल्मुकसकृदाच्छिन्नान्यग्नौ २१ ।
- सू० आधत्त-मध्यमेपिण्डं प्राश्नाति पुत्रकामा २२ ।
- सू० प्रेतेभ्यो ददाति २३ ।

हरिः, श्रीः, ओम् तत् सद् ।

बोधायन मुनि ने भी (अथैतांस्तिलमिश्रापः ० प्रति-  
ग्राह्य गन्धेन माल्येन चालङ्कृत्याग्नौ करिष्यामीत्यनुज्ञातो-  
ऽग्निमुपसमाधाय संपरिस्तीर्य तिल आहुतीर्जुहोति ) इस  
प्रकार श्राद्ध का विशेष निरूपण किया है, विस्तरभय से  
निखिलसूत्रों का उपन्यास नहीं किया गया है ।

† इदानीं कुछ विशेष बोधनार्थ आपस्तम्बीयश्रौतसूत्रों  
का उपन्यास किया जाता है,

( आपस्तम्बीयश्रौतसूत्राणि )—

(१) (आधत्त) इत्यादि मंत्र को पढ़ कर पुत्र की कामनावाली यजमान  
की पत्नी मध्यम पिण्ड को भक्षण करे ।

(२) यह जो पिण्डप्रदान कहा है सो मृतकों के प्रति ही कहा है कुछ  
जीवितों के प्रति नहीं ।

\* ब्राह्मणों के उपवेशन से अनन्तर तिलमिश्रित जल को ब्राह्मणों  
के हाथ में दे कर औ गन्धमाल्यादि से उन को अलङ्कृत कर ( मैं अब अग्नि  
में होम करता हूँ ) इस प्रकार ब्राह्मणों की आज्ञा को लेकर अग्नि को संमुख  
स्थापन कर कुशों से आच्छादित कर तीन आहुति करे ।

† शुक्लयजुर्वेदीय कात्यायन बोधायन मुनियों के वचनों की संमति  
कहकर अब कृष्णयजुर्वेदीय आपस्तम्बश्रौत सूत्रों की संमति दिखाते हैं (इदानीं)  
इत्यादि से ।

सू० अमावास्यायां यदहश्चन्द्रमसं न पश्यन्ति  
तदहः पिण्डपितृयज्ञं कुरुते १ ।

प्रथम-पत्र, द०, पट्ट, ० अ,

भाषा—जिसदिन चन्द्रमा को लोक न देखें उस दिन  
अमावास्या में पिण्डपितृयज्ञ करे।

० यद्यपि अमावास्या कथन से ही चन्द्रमा के अदर्शन का लाभ हो सकता है तथापि राजसूयादि यज्ञों में क्रियमाण जो अमावास्या नामक कर्म है उसका ग्रहण मत हो जाय, इस लिये ( जिसदिन चन्द्रमा का अभाव होय ) यह कहा है । एवं चन्द्रमा का अदर्शन कभी मेघों द्वारा अन्य दिन में भी हो सकता है, इस लिये ( अमावास्यायाम् ) यह कहा है ।

† वास्तव से तो “या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूः” इस श्रुति † से “दृष्टचन्द्रा सिनीवाली नष्टचन्द्रा

\* यहाँ पर “अमावास्यापामित्युक्ते दाक्षायणराजसूयकौण्डपायिना-मयनसारस्वतसत्तादी पक्षमध्ये अमावास्यां पिण्डपितृयज्ञमाप्तेः तद्व्यावृत्त्यर्थं चन्द्रादर्शन-इति विशेषणम्, चन्द्रादर्शनमभ्रादिनापि भवतीत्यतोऽमावास्यामिति चन्द्रादर्शनशब्देनात्र चन्द्रमसः परमक्षयो लक्ष्यते न सयमात्रं तस्य प्रतिदिनं सद्भावाद्, अतएव (सीणे ददादि) इति श्रुतिः संगच्छते” इसप्रकार कर्को-पाण्याय ने एतत्सूत्रसमानार्थक कातीयस्मृत्यों की व्याख्या में पदकृत्य किया है उस के अनुसार से कहते हैं, “यद्यपि” इति ।

† १ अरु स्वामीजी अपनी ऊहा से पदों की व्यवस्था करते हैं. ( ३१-स्तव ) इत्यादि से ।

‡ सामवेदीय पदार्थशब्दाक्षर ४ पृ० खं० ६ ।

कुहूर्मता' इस स्मृति ० से अमावास्या दो प्रकार की है एक तो चतुर्दशी तिथि में अपराह्नकाल में होनेवाली दृष्टचन्द्रा, औ एक अपराह्न के उत्तरकाल में प्रतिपद् के योगवाली नष्टचन्द्रा, तहां जो पूर्व अमावास्या दृष्टचन्द्रा है उस का नाम सिनीवाली है औ जो उत्तर अमावास्या नष्टचन्द्रा है उस का नाम कुहू है, तहां कुहू नामक अमावास्या का ग्रहण होय सिनीवाली का नहीं इसलिये (चन्द्रमसं न पश्यन्ति) यह कहा है + ।

सू० अपराह्णेधिवृक्षसूर्ये वा पिण्डपितृयज्ञेन चरन्ति १-७-२ ।

भाषा—अपराह्नकाल में अथवा अधिवृक्षसूर्यकाल में पिण्डपितृयज्ञ करे ।

सू० अपां मेध्यं यज्ञियम् इति समूलं सकृदा-  
च्छिन्नं बर्हिःराहरति १-७-३ ।

भाषा—(अपां मेध्यं यज्ञियं + सदेवं शिवमस्तु मे आच्येता

\* कालमाधवीये व्यासः ।

+ यहाँ पर अधिक मीमांसा की आकाङ्क्षा होय तो निर्णयामृत वा मदनपारिजात के सप्तम स्तवक को अवलोकन करें ।

॥ जिस समय में पृथिवी को त्याग कर केवल वृक्षों के ऊपर ही सूर्य की किरणों का निवेश होता है उस काल का नाम अधिवृक्षमूर्त्य है ।

+ यजु, तै, त्रा, कां, ३ प्र, ७ अनु ४, अपात् जलों का सारभूत औ पवित्र तथा यज्ञयोग्य, औ देवोपयोगी जो बर्हिं सो मरे प्रति कल्याणकारी होय, आप को छेदन करने वाला जो मैं हूं सो द्विसाजन्य पाप से युक्त हुवा हिसित मत होवें किन्तु शतवर्ष जीवनवाला होवें ।



वो मा रिपं जीवानि शरदः शतम् । इस मंत्र को पढ़ कर मूल के सहित एक प्रयत्न से उत्पादित कुशों का आहरण करे ।

सू० सकृदाच्छिन्नानि वा तृणान्युपमूलं दिनानि (४)

सू० दक्षिणाप्रागग्नेर्दक्षिणाग्निं परिस्तीर्य दक्षिणतः पश्चाद्वा दर्भान् संस्तीर्य दक्षिणाप्राग्नि एकैकशः पिण्डपितृयज्ञपात्राणि प्रयुनाक्ति स्फ्यं भक्षणं कृष्णाजिनमूलखलं मुसलं शूर्पमाज्यस्थालीं चरुस्थालीं येन चान्येनार्थो भवति ( ५ )

सू० दक्षिणतः प्रागीपं ब्रीहिमच्छकटमवस्थितं भवति ( ६ )

सू० अध्वर्युरुपवीती स्थालीमेकपवित्तेणान्तर्धाय तथा दक्षिणतः शकटादधिनिर्वपत्युत्तरतो वा (७)

( ४ ) अथवा ( उपमूलं ) मूल के समीप से एकवार ( दिनानि ) छेदन किये हुए दर्भतृण वा अन्य यज्ञोपयोगी तृणों का आहरण करे ।

( ५ ) दक्षिण की ओर अग्रवाले वा प्रागग्रवाले कुशों से दक्षिणाग्नि को आच्छादित कर फिर दक्षिण वा पश्चिम की ओर दर्भों को बिछाये कर दक्षिणपूर्व कोण में स्फ्य आदि एक २ पात्रों को स्थापन करे ।

अर्थात्—जिन २ पात्रों का मयोजन होय उन सब पात्रों को वहाँ पर स्थापन करे ।

( ६ ) दक्षिण से ईषत् पूर्व की ओर एक ब्रीहि वा शकट स्थापन करे ।

( ७ ) अध्वर्यु वा यजमान यज्ञोपवीती हो कर एक बस्त्र से स्थाली को बाँध कर शकट के दक्षिण की ओर से वा उत्तर की ओर से शकटारोहण कर शकट में से उस पात्र में ब्रीहि को निकासे ।

सू० तां पूरयित्वा निमार्ष्टि [८] ।

सू० मृन्मये निर्वपति पितृभ्यो वो जुष्टं निर्वपा-  
मीति तूर्णीं वा [९] ।

सू० अपरेणान्वाहार्य्य पचनं प्रत्यगुदग्रीये  
कृष्णाजिनउलूखले प्रतिष्ठिते दक्षिणाप्राची तिष्ठन्तीं  
पञ्चवहन्ति परापावमविवेकम् [१०] ।

सू० सकृत्फलीकरोति [११] ।

सू० दक्षिणाग्नौ जीवतण्डुलं श्रपयति [१२] ।

सू० अपहता अमुरा रक्षांसि पिशाचा वेदिसदः  
इत्यन्तरा गार्हपत्यान्वाहार्य्यपचनौ दक्षिणपूर्वेण वा  
ऽन्वाहार्य्यपचनं दक्षिणाप्राचीमेकरूप्यां पराचीं वेदि-  
मुद्धृत्य (शुन्धतां पितर) इत्यद्भिरवोक्ष्य (आयन्तु

—(८) उस पात्र को पूरण कर फिर हिलोरा दे कर घान्यों को स्थाळी के मुख के धरावर करे ।

(९) पितृभ्यः इत्यादि पढ़कर वा मौन धारण कर उन घान्यों को मृत्तिका के पात्र में स्थापन करे ।

(१०) दक्षिणाग्नि से पश्चिम और पश्चिमोत्तर ग्रीवा वाले कृष्ण मृगचर्म के ऊपर ऊलखल रख कर दक्षिण पूर्व स्थित हुई यजमान की पत्नी उन घान्यों को कूटे, (परापावम्) परापूय परापूय, (अविवेकं) अविविच्य। अविविच्य, शूर्पेण तुपमोक्षण परावपनं, सतुपपितृपाणां पृथक् करणं विवेकः, अर्थात् एक बार शूर्प से फटकारे अमनीया मत करे । (११) यह सूत्र स्पष्टार्थ है ।

(१२) जिस तरह से निखिल रूप से तण्डुलों का पाक न होय किन्तु कुछ २ जीवते रहें इस प्रकार उन तण्डुलों को पकावै ।

पितरो मनोजवसः) इत्यभिमन्त्र्य सकृदाच्छिन्नं बर्हि-  
रूर्णां (मृदु स्योनं पितृभ्यस्त्वाभराम्यहं अस्मिन् सी-  
दन्तु मे पितरः सौम्याः पितामहाः प्रपितामहाश्चा-  
नुगैः सह ) इति सकृदाच्छिन्नेन बर्हिषा वेदिं  
स्तृणाति [१३] ।

इति सप्तमी कण्डिका ।

सू० उत्पूतेन नवनीतेनानुत्पूतेन वा सर्पिषा  
स्थालीपाकमभिघार्य्य एकस्फयायां मेक्षणमासाय  
स्थालीपाकमासादयति [१] ।

सू० दक्षिणतः कशिपूपवर्हणमाञ्जनमभ्यञ्जनमुद-  
कुम्भमित्येकैकश आसादयति [२] ।

सू० अध्वर्य्यरूपवीती दक्षिणं जान्वाच्य मेक्षणमुप-  
स्तीर्य्य तेनावदायाभिघार्य्य सोमाय पितृपीताय स्वधा

( १३ ) ( अपहता ) इत्यादि पद कर गार्हपत्य औ दक्षिणाग्नि के मध्य  
में वा दक्षिणाग्नि से दक्षिण—पूर्व की ओर स्फय से दक्षिणप्राची एक रेखा  
निकासे फिर ( शुन्धन्ताम् ) इत्यादि पद कर जल गिरावे फिर ( आपन्तु )  
इत्यादि से अभिमंत्रण कर सकृदाच्छिन्न कुशों को लेकर (मृदुस्योनम्) इत्यादि  
मंत्र को पढ़ कर स्थान के छिये पितरों की प्रार्थना कर वेदि को उन कुशों से  
आच्छादित करे ।

(१) गरम कर पूत हुये गाखन से वा घृत से स्थालीपाक को अभिधारण  
कर रेखा के ऊपर मेक्षण को रख कर वहाँ स्थालीपाक करे स्थापन करे ।

(२) स्थालीपाक से दक्षिण तरफ—मंच, मिरहाना, कज्जल अवटन, जल  
कुम्भ को स्थापन करे ।

नम इति दक्षिणाग्नौ जुहोति (३) (यमायाङ्गिरसे पितृमते स्वधा नम) इति द्वितीयाम्, (अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नम) इति तृतीयाम् (४) ।

सू० ये मेक्षणे तण्डुलास्तान् हुत्वा तूष्णीं मेक्षणमादधाति (५) ।

सू० न यमाय जुहोत्येके (६) ।

सू० अपयन्त्वसुराः पितृरूपा ये रूपाणि प्रातिमुच्याचरन्ति, परां पुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाल्लोकान् प्रणुदात्यस्मात् (ये देवाः + पितरो ये च मानु-

(३) अध्वर्यु वा यजमान उपवीती होकर दक्षिणजानु को निवाय कर मेक्षण का उपस्तरण कर तिस्र मेक्षण से चरु का खण्ड कर औ अभिघारण कर ( सोमाय ) इत्यादि पद कर दक्षिणाग्नि में हवन करे ।

(४) फिर ( यमाय ) इत्यादि पद कर द्वितीय आहुति करे, फिर 'अग्नये' इत्यादि पद कर तृतीय आहुति करे ।

(५) आहुति से अवशिष्ट जो मेक्षण में संश्लिष्ट तण्डुल हैं उन का होमकर मौन धारण कर मेक्षण को अग्नि में फेंके, यह जो मेक्षण के संग लगे हुये चरु का होम कहा है सो तीसरी आहुति में जलना कुछ यह नहीं जलना कि यह चतुर्थी आहुति का विधान है क्योंकि ऐसे माननेसे ( तिस्र आहुतीर्जुहोति ) इस श्रुति के सङ्ग विरोध होगा ।

(६) कोई यह कहते हैं कि यम के नाम का होम न करे ।

† जो देवतारूप पितर हैं, औ जो मानुषरूप पितर हैं अथवा जो गर्भ में ही मर गये हैं औ जो जङ्गल में फँके गये हैं औ जो गाढ़ कर निकामे गये हैं, औ जो पृथिवीमें गाड़े गये हैं सो सभी यहाँ आन कर भली प्रकार से हर्ष को प्राप्त हों ।

वे ये गर्भे मच्चुरुत ये परास्ता, य उद्धता उत ये नि-  
खातास्ते सम्यश्च इह मादयन्ताम्) (ये रूपाणि प्रति-  
मुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति, परा पुरो  
निपुरो ये भरन्त्यग्निष्ठांल्लोकान् प्रणुदात्यस्माद्) (ये  
ज्ञातीनां प्रतिरूपाः पितॄन् माययाऽसुराः प्रविष्टाः परा  
पुरो निपुरो ये भरन्त्यग्ने तानस्मात्प्रणुदस्व लोकाद्)  
इति दक्षिणाग्नेरेकोल्मुकं धूपायद् हसति (७) ।

सू० दक्षिणपूर्वमवान्तरदेशं सकृत् स्फ्येनोल्लिख्य 'उ-  
दीरतामवर' इत्यद्भिरवोक्ष्योल्लिखितान्ते निदधाति (८)

सू० यजमानोऽत ऊर्ध्वं प्राचीनावीती कर्माणि  
करोति (९) ।

(७) माया कर हमारे पितरों के समान रूप को धारण करने वाले जो  
असुर हैं सो इम स्थान से दूर गमन करें इस अर्थ वाले "अपयन्तु"  
इत्यादि मंत्रों को पढ़ कर दक्षिणाग्नि से एक उल्मुक को ग्रहण करें, उल्मुक  
कैसा हो कि "धूपायद्" धूमवाला ।

(८) दक्षिणपूर्वरूप अगन्तर देश को एक बार स्फ्य से उल्लेखन कर  
(उदीरताम्) इत्यादि मंत्र पढ़ कर जल से उस रेखा को प्रोक्षण कर उस के  
समीप उल्मुक को स्थापन करें, "उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः  
सोम्यासः असु य ईयुरवृका नृनशास्तेनोऽवन्तु पितरो हवेपु" यजु० अ० १९ मं  
४९ यह संपूर्ण मंत्र है, जो हमारे पितर जिस २ स्थान में हैं वह उस २ से  
उत्कृष्ट स्थान को प्राप्त हों और जो वायु रूप तथा सत्यवादी सर्वके मित्र हमारे  
पितर हैं वह इस यज्ञ में आगमन कर हमारी रक्षा करें, यह मंत्र का भाव है ।

(९) इदानीं जो कर्म आगे किये जायेंगे वह अध्यय्यु मत करे किन्तु  
प्राचीनावीती हो कर यजमान ही करे ।

सू० मार्जयन्तां मम पितरो मार्जयन्तां मम पिता-  
महा मार्जयन्तां मम प्रपितामहा, इति एकस्फ्यायां  
त्रीनुदकाञ्जलीन् निनयति (१०) ।

सू० प्रसव्यं वा त्रिः परिषिञ्चति (११) ।

सू० त्रीनुदपात्रान्वाजसनेयिनः समामनन्ति (१२) ।

इत्यष्टमी कण्डिका ।

सू० सव्यं जान्वाच्यावाचीन पाणिः सकृदाच्छिन्ने  
बर्हिषि दक्षिणापवर्गान् पिण्डान् ददाति एतत् ते तता-  
सौ ये च त्वामनु इत्येतैः प्रतिमन्त्रम् (१) ।

सू० तूष्णीं चतुर्थम् (२) स कृताऽकृतः (३)  
प्रपितामहपृष्ठतीन् वा (४) ।

(१०) (मार्जयन्ताम्) इत्यादि पद कर उस रेखा में तीन अञ्जलि जलकी गेरे ।

(११) अथवा प्रसव्य होकर उस स्फ्यकृत रेखाके चारो ओर जल गिरावै  
बीच में नहीं ।

(१२) शुक्यजुर्वेदी तो अञ्जलि के स्थान में तीन जलपात्रों के ही स्थापन  
की आज्ञा देते हैं ।

(१) वामजानु को निवाय उत्तानहस्तवाला हो कर सकृदाच्छिन्न कुशों  
के ऊपर दक्षिणापवर्ग तीन पिण्डों को स्थापन करे, औ स्थापन काल में  
( एतत् ते ) इत्यादि का उच्चारण करे ।

(२) मौन धारण कर एक चतुर्थ पिण्ड और स्थापन करे ।

(३) यह चतुर्थ पिण्डदान किसी शाखा में लिखा है किसी में नहीं इस  
लिये किया भी जाता है औ नहीं भी किया जाता है ।

(४) अथवा प्रपितामह से आदि ले कर पिण्ड प्रदानादि करे, अर्थात्—  
चाहे पिता पितामह प्रपितामह इस प्रकार से चाहे प्रपितामह पितामह पिता इस  
प्रकार से पिण्डप्रदान करे ।

सू० नाऽनाम गृहीतं गच्छति (५) यदि बन्धून् न विद्यात् स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषद्भ्य इति प्रथमं पिण्डं दद्यात्, स्वधा पितृभ्योऽन्तरिक्षसद्भ्य, इति द्वितीयम्, स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्य, इति तृतीयम् (६) ।

सू० यदि द्विपिता स्यादेकैकस्मिन् पिण्डे द्वौ द्वावुपलक्षयेद् (७) ।

सू० यदि जीवपिता न दद्यादाहोमात् कृत्वा विरमेद् (८) ।

सू० यन्मे माता प्रममाद यच्च चाराननुव्रतं, तन्मेरेतः पिता वृङ्क्तामाभुरन्योपपद्यताम्, पितृभ्यः स्वधाविभ्यः स्वधा नमः, पितामहेभ्यः स्वधाविभ्यः स्वधा नमः, प्रपितामहेभ्यः स्वधाविभ्यः स्वधानमः, इत्युपस्थाय अत्र पितरो यथाभागमादयध्वम्, इत्युक्त्वा पराङ् आ वर्तते (९) ।

(५) बिना नाम के गृहण से पितरों को प्राप्त नहीं होता है इस से अवश्य नाम ग्रहण करे ।

(६) यदि नाम न ज्ञात हो तो ( स्वधा ) इत्यादि प्रकार से प्रदान करे ।

(७) यदि दो पिता हों तो एक पिण्ड में दो दो का नाम उच्चारण करे ।

(८) यदि यजमान के पिता आदि में से कोई जीवता हो तो पिण्डप्रदान मत करे किन्तु होमपर्यन्त कर्म कर पितृयज्ञ को समाप्त करे ।

(९) जो मेरी माता ने प्रमाद से पातित्रत्यव्रत का भङ्ग किया है तिस पर-

सू० ओष्मणो व्यावृत्त उपास्ते (१०) ।

सू० अमीमदन्त पितरः सोम्या, द्विति व्यावृत्त  
ऊष्मणि अभि पर्यावर्ततेऽव्यावृत्ते वा (११) ।

सू० यः स्थाल्यां शेषस्तमवजिघ्रति ( ये  
समानाः सुमनसः पितरो यमराज्ये तेषां लोकः स्वधा  
नमो यज्ञो देवेषु कल्पंतां, वीरं धत्त पितर ) इति (१२) ।

सू० आमयाविना प्राश्योऽन्नाद्यकामेन प्राश्यो  
योऽलमन्नाद्याय सन् नाद्यात् तेन वा प्राश्यः (१३) ।

सू० पूर्ववदेकस्फयायां त्रीनुदकाञ्जलीनुपनिनीयाऽऽ-  
ञ्जनाऽभ्यञ्जने वासश्च त्रिरनुपिण्डं ददाति (१४) ।

पुरुषसंबन्धि संकल्परूप दोष से दृष्ट जो मातासंबन्धी रज है उस को पिता  
शोधन करे इस अर्थ वाले ( यन्मे माता ) इत्यादि मंत्र तथा ( पितृभ्यः )  
इत्यादि मंत्र से पितरों का उपस्थान कर फिर ( अत्र पितरः ) इत्यादि पद  
कर वहां से फिर कर उत्तरमुख हो कर स्थित होवे ।

(१०) जब तक पिण्डों में उष्णता की निवृत्ति न होय तब तक उत्तरमुख  
स्थित होवे ।

(११) उष्णता के निवृत्त हो जाने पर वा कुछ २ उष्णता रहनेपर फिर  
दक्षिणमुख होवे औ ( अमीमदन्त ) इत्यादि का जप करे ।

(१२) ( ये समाना ) इत्यादि मंत्र पद कर जो स्थाली में शेष अन्न है  
उस को सूंवे ।

(१३) क्षय आदि रोग कर के युक्त जो पुरुष है वह स्थाली शेष चरु  
को भक्षण करे अथवा जो अन्नाद्यकाम है अर्थात् अन्न के होने पर भी अजी-  
र्णरोग से भुक्ति शक्ति से शून्य है वह उस को भक्षण करे ।

(१४) पूर्व की तरह स्फ्यकृत रेखा में तीन जल की अञ्जलिओं को सम-



सू० आङ्क्ष्व ततासावाङ्क्ष्व पितामहासावा-  
ङ्क्ष्व प्रपितामहासावित्याञ्जनम्, एवमभ्यञ्जनमभ्य-  
ङ्क्ष्वेति मंत्रं सं नमति (१५ । १६) ।

सू० यदि नामानि न विद्याद् (आञ्जतां मम  
पितर आञ्जतां मम पितामहा आञ्जतां मम प्रपि-  
तामहा ) इत्याञ्जनम्, एवमभ्यञ्जनमभ्यञ्जतामिति  
मंत्रं सं नमति (१७) ।

इति नवमी कण्डिका ।

सू० (एतानि वः पितरो वासांस्यतो नोऽन्यत्  
पितरो मा योष्ट ) इति वाससो दशां छित्त्वा नि  
दधाति ऊर्णास्तुकां वा पूर्वे वयसि, उत्तर आयुषि  
स्वं लोम ( १ ) ।

र्पण कर फिर प्रत्येक २ पिण्डों के ऊपर तीन २ बार कज्जल, अवटन, वसन का  
प्रदान करे ।

(१५-१६) ( आङ्क्ष्व तत ) इत्यादि पद कर अञ्जन समर्पण करे, एवं  
( अभ्यञ्जनमभ्यङ्क्ष्व तत ) इत्यादि पद कर अवटन समर्पण करे ।

(१७) यदि पिता आदि का नाम परिज्ञात न होय तो ( आञ्जताम् )  
इत्यादि पद कर अञ्जन औ अभ्यञ्जन प्रदान करे । कहीं (आञ्जन्तां) यह पाठ है ।

(१) पंचाश वर्ष से न्यून अवस्था वाला यजमान होय तो (एतानि वः)  
इत्यादि पद कर वस्त्र की दशा वा भेदी के रोमों को छेदन कर पिण्डों पर  
रखवे औ यदि पंचाश वर्ष से अधिक वय वाला होय तो अपनी छाती के  
ही रोम छेदन कर स्थापन करे ।

सू० वीतोष्मसु पिण्डेषु 'नमो वः पितरो रसायः'

इति नमस्कारान् जपति ( २ ) ।

सू० ( गृहान्नः पितरो दत्त सदा वः पितरो

देष्म ) इति पितृनुपतिष्ठते ( ३ ) ।

मू० ( ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं

परिष्कृतं, स्वधा स्थ तर्पयत मे पितृन् ) इत्युदकं  
नि नयति ( ४ ) ।

सू० ( मनोऽन्याहुवामह ) इति मनस्वतीभिरुपतिष्ठते ( ५ )

सू० ( उत्तिष्ठत पितरः प्रेत शूरा यमस्य पन्थामनुवेता  
पुराणं, धत्तादस्मासु द्रविणं यत्र भद्रं प्रणो ब्रूताद्  
भागधां देवतासु ) इति पितृनुत्थापयति ( ६ ) ।

---

सू० ( परेत पितरः सोम्या ) प्रवाहण्या पितृन्  
प्रवाहयति (७) ।

सू० ( प्रजापते न त्वदेतानि ) इति यज्ञोपवीती  
गार्हपत्यदेशं गच्छति (८) ।

सू० 'यदन्तरिक्षम्' इति पङ्क्त्या गार्हपत्यमुप  
तिष्ठते (९) ।

सू० अपान्त्वौषधीनां रसं प्राशयामि भृतकृतं  
गर्भं धत्स्व इति मध्यमं पिण्डं पत्न्यै प्रयच्छति (१०)

सू० (आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्त्रजं

(७) ( परेत पितरः ) इत्यादि पद कर पितरों की प्रवाहणी करे, प्रवाहणी  
नाम ( प्रस्थान ) का है ।

(८) "प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिता बभूव, यत्कामास्ते  
जुहुमस्तन्नोऽस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्" यजु० अ० २३ मं० ६५ इस को  
पद यज्ञोपवीती होकर गार्हपत्य आग्निके समीप उपस्थित होय । हे प्रजापते आप  
से अन्य कोई भी देवता अनेक रूप वाला नहीं है इससे आप ही अनेक रूप  
वाले हो कर प्रपंच का परिभव ( संहार ) आदि करते हो, हे अन्न ! जिस का-  
मना से हम लोक होम करते हैं सो कामना हमारी पूर्ण होय औ धन के हम  
स्वामी होंय, यह इस मंत्र का भाव है, ऋग्वेद में तो ( विश्वा रूपाणि ) हम  
के स्थान में ( विश्वा जातानि ) यह पाठ है औ यजु के १० अ० २० मंत्र में  
तो ( यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽस्त्वयममुष्य पितासावस्य पितावयस्याम पतयो-  
रयीणाम् ) इतना विशेष है ।

(९) ( यदन्तरिक्षम् ) इत्यादि पङ्क्तिछन्द वाले मंत्र को पद कर गार्हपत्य  
आग्निके उपस्थान करे ।

(१०) ( अपान्त्वौषधीनाम् ) इत्यादि पद कर मध्यम पिण्ड का पत्नी के  
प्रति प्रदाह करे ।

यथेह पुरुषोऽसद्दे) इति तं पत्नी प्राश्नाति पुमांसं ह  
जानुका भवतीति वि ज्ञायते (११) ।

सू० (ये सजाताः + समनसो जीवा जीवेषु मा-  
मकाः, तेषां श्रीर्मायि कल्पतामस्मिन् लोकेशतं समा)  
इत्यवशिष्टानां यजमानः प्राश्नाति न वा (१२) ।

सू० स्थाल्यां पिण्डान् समवधाय (ये समाना)  
इति सकृदाच्छिन्नमग्नौ प्र हरति (१३) ।

सू० “अभून्नो दूतो हविषो जातवेदा अवाङ् ह-  
व्यानि\* सुरभीणि कृत्वा । प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते  
अक्षन् प्रजानन्नग्ने पुनरप्येहि देवान्” इत्येकोल्मुकं प्रत्य-  
पिसृज्य प्रोक्ष्य पात्राणि द्वन्द्वमभ्युदाहरति (१४) ।

( ११ ) ( आपत्त ) इत्यादि मंत्र पद कर यजमान की पत्नी उस मध्यम  
पिण्ड को भक्षण करे, ऐसे करने से अवश्य ही वह पुत्रजननशीला होगी ।

+ यजु अ० १९ मं० ४६ में तां ( ये समानाः ) यह पाठ है, इन जीवते  
हुये जनों में जो समनस जीव हमारे समान गोत्रवाले हम से स्पर्द्धा करते हैं  
उन की संपत्ति की मेरे में कल्पना होय अर्थात् उन को त्याग कर लक्ष्मी हमारे  
को आश्रयण करे औ यह लक्ष्मी अनेक वर्ष तक स्थिर रहे यह इस का भाव है ।

( १२ ) ‘ये’ ‘सजाता’ इत्यादि मंत्र को पद कर अवशिष्ट दोनों पिण्डों में से  
एक पिण्ड को यजमान भक्षण करे (न वा) अथवा न भक्षण करे, अर्थात् किसी  
रोगादि की निवृत्ति कामना होय तो खाय नहीं तो न खाये ।

( १३ ) भक्षण के अभाव पक्ष में उन पिण्डों को स्थाली में रख कर  
(ये समाना) यह पूर्वोक्त मंत्र पद कर सकृद् आच्छिन्न कुशों को अग्नि में फेंके ।

\* पूर्व २० पृष्ठ में इस का अर्थ देखा ।

( १४ ) (अभून्नो दूतः) इत्यादि मंत्र को पद कर उत्प्लुक्त औ पात्रों को  
फेंक कर फिर प्रोक्षण कर दो दो मिला कर उन पात्रों का ग्रहण करे ।

सू० सन्तिष्ठते पिण्डपितृयज्ञः (१५) ।

सू० अपः पिण्डानभ्यवहरेद् ब्राह्मणं वा प्रा-  
शयेद् (१६) ।

सू० सोऽयमेवं विहित एवानाहिताग्नेः (१७) ।

सू० औपासने श्रपणधर्मा होमश्च, अतिप्रणीते  
वा जुहुयाद् (१८।१९) ।

सू० यस्मिन् जुहुयात् तमुपतिष्ठेत् (२०) ।

सू० तत्र गार्हपत्यशब्दो लुप्येत संस्कारप्रतिपे-  
धाद् (२१) ।

इत्यापस्तम्बीये श्रौतसूत्रे पिण्डपितृयज्ञः ।

( १५ ) इस प्रकार पिण्डपितृयज्ञ समाप्त हुआ ।

( १६ ) यदि यजमान उन पिण्डों को न भक्षण करे तो उन शेष पिण्डों को जल में फेंके, वा ब्राह्मण के प्रति भक्षण करावै ।

( १७ ) अग्नि के आधान से रहित पुरुष के प्रति भी यह यज्ञ इसी प्रकार ही विहित है अर्थात् उस को भी यह यज्ञ अवश्य करना होगा ।

( १८।१९ ) अग्नि के आधान से रहित जो पुरुष है वह औपासन अग्नि में ही चरु को पकावै औ उसी में होम करे, अथवा औपासन में पका-  
कर अतिप्रणीत नामक अग्नि में होम करे ।

( २० ) जिस अग्नि में ( औपासन वा प्रणीत में ) होम करे तिसी अग्नि का ही ( यदन्तरिक्षम् ) इत्यादि मंत्र से उपस्थान करे ।

( २१ ) औपासन वा अतिप्रणीत अग्नि का जब उपस्थान किया जायगा तब ( यदन्तरिक्षम् ) इस मंत्र में जो गार्हपत्य शब्द है उस का उच्चारण न करे क्योंकि अनाहिताग्नि के यहां आधान संस्कारनिमित्तक गार्हपत्य अग्नि का अभाव है ।

सामवेदीय श्रौतसूत्रकार लाट्यायन तथा द्राह्यायण मुनि ने भी “अमावास्ये पितृयज्ञः”† इस प्रकार इस पितृयज्ञ का निरूपण किया है ।

शौनकाथर्वणसूत्रों में भी इसी प्रकार से पितृ कृत्य का विधान कहा है । एवं गोपितृयज्ञ तथा महापितृयज्ञ का भी वेद में निरूपण किया है परन्तु विस्तर भय से उन सब का उपन्यास नहीं किया जाता है ।

इस प्रकार पितृयज्ञ के अनुष्ठान से जो नरों को लाभ होता है वह तो पूर्वोक्त पिण्डपितृयज्ञ के निरूपण से ज्ञात हो ही चुका है परन्तु अब जो साक्षात् वेद के वाक्य वैदिक-कर्म के न अनुष्ठान करने में अनिष्ट बोधन करते हैं उन का संक्षेप से उपन्यास किया जाता है जिस से यह दृढ़ होजाय कि यह वैदिक कर्म अवश्य ही अनुष्ठेय है ।

“ एष \* पन्था एतत्कर्मेतद् ब्रह्म तत् सत्यं

† १० प्रपाठक १२कं० ६ । लाट्यायनमुनि तथा द्राह्यायणमुनि प्रणीत श्रौतसूत्रों में प्रायः सूत्रपाठ समान ही है, यह भी जानो ।

(१) मृत पितरों की सद्गति, तथा सत्संतान की प्राप्ति, तथा धनधान्य की समृद्धि, आदि रूप लाभ जानना ।

एवं च ( क्यों करना चाहिये ) इस चतुर्थ संशय का निवारण हुआ, अर्थात् वेदविहित तथा अनेक कल्याणप्रद होने से करना चाहिये, ( न करने क्या हानि है ) इस पंचम संदेह के निराकरणार्थ अग्रिम वेदवाक्य का न्यास जानना ।

\* एतच्छब्दः सन्निहितार्थपरामर्शकः, सन्निहितश्चाप्योऽनीत आगामी अर्थं द्विविधः, तथा च ( एष ) उभयविधोऽप्यर्थः ( पन्थाः ) पुरुषार्थस्पर्शः, साधनमिति यावद्, तदुभयं विस्पष्टं निर्दिश्यते ( एतत्कर्मा, एतद् ब्रह्म ) अग्नि मील इत्यारभ्य, अन्धो रूपम् इत्यन्तेनातीतसन्निहितग्रन्थेन प्रतिपादिते

तस्मान्न प्रमाद्येत्तन्नातीयाद् न ह्यत्याय नपूर्वे येऽत्याय-  
स्ते परावभूवुः तदुक्तमृषिणा—‘ प्रजा ह तिस्रोऽत्या-  
यमीयुर्न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे, वहद् ह तस्थौ भुव-  
नेष्वन्तः पवमानो हरित आ विवेश ’ इति, ‘ प्रजा-  
ह तिस्रोऽत्यायमीयुरिति’या वै ता इमाः प्रजास्तिस्रो-  
ऽत्यायमायंस्तानीमानि वयांसि वङ्गावगधाश्चैरपादाः,  
‘ न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे ’ इति, ता इमाः प्रजा  
अर्कमभितो निविष्टा इममेवाग्निं, वहद् ह तस्थौ भुव-  
नेष्वन्तः इति, अद उ एव वहद् भुवनेष्वन्तरसाया-

यत्कर्णं तथा उक्तम् इत्यादिभ्य आचार्य इत्यन्तेन सांश्रितेनारण्यक-  
द्वयरूपेणाक्षरग्रन्थेन निरूपितं यत्सगुणं निर्गुणं च ब्रह्म एतदुभयमपि पुरुषार्थ-  
साधनं, व्यवहारपरमार्थभेदेनोभयमपि सत्यम्, अत्र कर्मशब्देन तज्ज्ञानपूर्वकमनु-  
ष्ठानं ब्रह्मशब्देन च तद्विषयं ज्ञानमात्रं शृण्वते, यथाऽक्तस्योभयविधस्य मार्गतत्वं  
हृदयितुमयोगव्यावृत्तिमन्ययोगव्यावृत्ति च विधत्ते ( तस्मान्न प्रमाद्येत ) कर्मानु-  
ष्ठानब्रह्मज्ञानयोरसंपादनं प्रमादः, तथा सत्तादयितुं प्रवृत्तेनाऽप्यालस्यादिना  
तत्तरित्यागोऽपि प्रमादः, एव तदुभयं न व्यथति, अनेनाऽयोगव्यावृत्तिरुक्ता,  
कृषिवाणिज्यादी वा शास्त्रान्तराभिदे चैत्यवन्दनादी वा पुरुषार्थसाधनवद्भ्या  
या प्रवृत्तिः सायं पूर्वोक्तमार्गादन्ययोगः, तद्व्यावृत्तिः तन्नातीयाद् इत्यनेनोच्यते  
( तद् ) पूर्वोक्तमुभयं, न अतिक्रमेदित्यर्थः, तमेवानतिक्रमं स्वपक्षताधनपरपक्ष-  
द्वयणाभ्यां हृदयति ( न ह्यत्यायन ) इत्यादिना, पूर्वे=मनुवसिष्ठादय एतं पन्थानं  
नैवाऽत्यक्तामन् ये तु नास्तिका अत्यक्तामन् ते परावभूवुः=पुरुषार्थाद् अष्टा  
भूता इत्यर्थः, ब्राह्मणेनोक्तस्यार्थस्य दाढ्याय मन्त्रमुदाहरति। ( तदुक्तमृषिणा ) इति  
केन चिन्मन्त्रदर्शना पुरुषेण तन्मन्त्ररूपया वाचा कयाचिद् कृत्वा प्रोक्त-  
मित्यर्थः, तस्या ऋचः प्रथमपादं व्याचष्टे—या वै ता इमा इत्यादिना, एवमष्टे  
ऽपि बोध्यम्

दित्यः “पवमानो हरित आविवेश, इति, वायुरेव पव-  
मानो दिशो हरित आविष्टः” । सूत्रवद-पितृपरिष्कार १ अ० १ खं. १

भाषा० ( एतत्कर्म- एतद् ब्रह्म ) यह जो पूर्वोत्तर ग्रन्थ  
से कर्म औ ब्रह्म का निरूपण किया है ( एष पन्थाः ) यही  
पुरुषार्थ का मार्ग है अर्थात् भोग मोक्ष के देनेवाला है ( ए-  
तत् सत्यम् ) यही ( वेदोक्त कर्म तथा ब्रह्मज्ञान ) अवश्य फल  
देने से सत्य है, औ अन्य जो अवैदिक अनुष्ठान हैं वह अ-  
नर्थ पर्यवसायी होने से मिथ्या हैं ( तस्मान्न प्रमाद्येत् )  
तिस आश्रयमार्ग से प्रमाद न करे औ ( तन्नातीयाद् ) तिस  
मार्ग का अतिक्रमण भी मत करे किन्तु आलस्य तथा अन्य  
कुमार्गों को त्याग कर इसी का ही अनुसरण करे, इसी से  
ही ( सहाय्यायन् पूर्वं ) जो पूर्व मनु वसिष्ठ आदि महापुरुष  
हुये हैं वह इस मार्ग का अतिक्रमण ( उल्लङ्घन ) नहीं  
करते भये औ ( येऽत्यायन् ) जो नास्तिक लोक इस मार्ग  
का अतिक्रमण करते भये ( ते परा वभृवुः ) वह पुरुषार्थ  
से भ्रष्ट हुये निरादर को प्राप्त हुये हैं ।

इस ब्राह्मण उक्त अर्थ की दृढता के अर्थ मंत्र का प्रमाण  
देते हैं ( तदुक्तमृषिणा ) इति, अब इस मंत्र का स्वयं ही  
ब्राह्मण व्याख्यान करता है कि ( प्रजा ॐ ह तिस्रो ऽत्याय-  
मीयुः इति, यावै ता इमाः प्रजास्तिस्रो ऽत्यायमायन् तानी-  
मानि वयांसि वद्मा अवगधाश्चेरपादाः ) अर्थात् ब्राह्मणादि

\* लोके हि गुरुशास्त्रोपदेशरहितानां बाहुल्यमुपलभ्यते तत्प्रसिद्धिघोत-  
नार्थो ( ह ) शब्दः ।



भेद से जो अनेक प्रकार की प्रजा हैं उन में से तीन भाग जो प्रजा हैं वह वैदिक कर्म के उलङ्घन करनेवाली हैं औ एक भाग वैदिक कर्म में निष्ठावाली हैं, तहां जिन प्रजाओं ने वैदिक कर्म का त्याग किया है उन प्रजाओं की गति कहते हैं—( तानीमानि वयोसि ) अर्थात् जिन्हों ने श्रौत-कर्म का त्याग किया है उनमें से एक भाग तो काक आदि पक्षियोनियों को प्राप्त होते हैं जो कि आकाश में विचरने वाले हैं औ एक भाग वृक्ष औ अवगध हैं अर्थात् भूमि में होनेवाले वन के वृक्ष तथा ब्रीहि यव आदि ओषध हैं औ एक भाग ईरपाद हैं अर्थात् पृथ्वी के विल में निवास करने वाले पादोदर ( सर्प ) आदि हैं, अर्थात् जिन लोकों ने पूर्वोक्त श्रौत मार्ग का त्याग किया है वह मर कर नरक भोग से अनन्तर पशु-पक्षि कीट स्थावर आदि अनेक तिर्य्यग् योनियों को प्राप्त होते हैं

इस प्रकार वैदिकमार्ग के अतिक्रमण करने वाली तीन प्रकार की प्रजा की व्यवस्था कह कर इदानीं एक भाग वाली जो आस्तिक प्रजा है उस की गति द्वितीय पाद से कहते हैं “ न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे” इति ।

इसी का विवरण करते हैं ( ता इमाः प्रजा अर्कमभितो निविष्टा इममेवाग्निम् ) इति, अर्थात् आस्तिक प्रजा में से कोई एक तो आहवनीय रूप ( अर्क ) अर्चनीय जो अग्नि है

१ ( वृक्षाः ) रनगता वृक्षाः, अवगधाः = अवन्ति = रक्षन्ति मनुष्यादीन् इति अवाः, वृध्यन्ते = अभिरक्षन्ते नैरिति गधाः, वनस्पतिरूपा ब्रीहि-यवादिरूपा ओषधयः, इत्यर्थः ।

उस की उपासना करते हैं औ कोई एक ( बृहद् ह तस्यो भुवनेष्वन्तः ) इसी का विवरण कहते हैं कि ( अद'उ'एव बृहद् भुवनेष्वन्तरसावादित्यः ) इति, अर्थात् यह जो ब्रह्माण्ड में व्यापक तेजोमय मार्तण्ड है उस की उपासना करते हैं, औ कोई एक (पवमानो हरित आविवेश) इस का विवरण-- ( वायुरेव पवमानो दिशो हरित आविष्ट ) इति, अर्थात् निखिल दिशा में संचारी जो पवित्ररूप वहनशील वायु है तिस की उपासना करते हैं, अर्थात् समष्टि वायु रूप हिरण्यगर्भ की उपासना करते हैं ।

भाव यह है कि आस्तिक लोक अग्नि आदि की उपासना द्वारा सद्गति को प्राप्त होते हैं, औ नास्तिक लोक पक्षि आदिरूप अधोगति को प्राप्त होते हैं ॥

मनु भगवान् एवं योगी याज्ञवल्क्य मुनि ने भी—

अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन् ।

प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः\* मनु. ५०. ११४४

विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनाद् ।

अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति† म. ३।२।८

इन वाक्यों से विहित कर्म के न करने से प्रत्यवाय औ पातित्यरूप अनिष्ट बोधन किया है ।

\* विहित कर्म के न करने से औ निषिद्ध कर्मों के आचरण से तथा विषयों में अति आसक्त होने से पुरुष प्रायश्चित्त का भागी होता है यह मनु जी के वाक्य का अर्थ है ।

† विहित कर्म के न अनुष्ठान से औ निन्दित ( परस्त्री गमनादि ) के सेवन से तथा इन्द्रियों को न रोकने से पुरुष पाप को प्राप्त होता है ।

एवं च वेदविहित होने से, तथा न करने से अनिष्टप्रद होनेसे यह पितृयज्ञ अवश्य ही करना चाहिये यह सिद्ध हुआ।

### महालयश्राद्धमीमांसा ।

अब जो पुरुष यह सन्देह करते हैं कि (विशेष कर के आश्विन के कृष्णपक्ष में ही यह पितृकृत्य क्यों किया जाता है) इस के समाधान अर्थ अन्य विचार का आरम्भ किया जाता है ।

तहां आश्विनकृष्णपक्ष में विशेषरूप से श्राद्धविधान बोधन के लिये पहिले सामान्य रूप से श्राद्ध के कालों का परिगणन किया जाता है ।

“अमावास्याऽष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम्,  
द्रव्यं ब्राह्मणसंपत्तिर्विषुवत्सूर्य्यसंक्रमः २१७ ।

व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्य्ययोः,  
श्राद्धं प्रतिरुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः” २१८

(वाचस्पत्योपाध्याय १ । पा. ४० ।)

अर्थात्—अमावास्या. अष्टका. वृद्धि, कृष्णपक्ष, उत्तरायण, दक्षिणायन, द्रव्य, ब्राह्मणसंपत्ति, विषुवत्, सूर्य्यसंक्रम, व्यतीपात, गजच्छाया, चन्द्रग्रहण, सूर्य्यग्रहण, प्रतिरुचि, यह सब श्राद्ध के काल हैं ।

तहां अमावास्या तिथि में जिस प्रकार श्राद्ध का विधान

१ आश्विनकृष्णपक्ष, ज्येष्ठपक्ष, पितृपक्ष, महालय, यह सब शब्द एकार्थक हैं । कन्यार्कयुक्त आश्विनकृष्णपक्ष का ही नाम महालय है । केवल का नहीं यह भी मत है ।

वह तो पूर्व सविस्तर कथन किया ही गया है परन्तु तना विशेष यहां पर यह भी जानना आवश्यक है कि कोई एक आचार्य तो होम तथा पिण्डप्रदान तथा ब्राह्मणभोजन इन तीनों का जो समुदाय उस का नाम श्राद्ध मानते हैं औ कोई एक पिण्डपितृयज्ञ को श्राद्ध मान कर होम तथा ब्राह्मणभोजन को उस श्राद्ध का अङ्ग कहते हैं, औ कोई एक तो ( पितृयज्ञं तु ० निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान्, पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ) इस मानव-ध्वन से पिण्डदान ब्राह्मणभोजन का नाम श्राद्ध मानते हैं, + सर्वथा ही अमावास्या श्राद्ध का काल है औ अमावास्या के दिन होम पिण्डप्रदान ब्राह्मणभोजन अवश्य कर्तव्य है यह निर्विवाद है ।

एवं मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन, मास के कृष्णपक्ष की जो चार अष्टमी हैं वह अष्टमी भी श्राद्ध का काल जानना, तहां अष्टमी शब्द से इन तिथियों के पूर्व जो सप्तमी तथा इन से उत्तर जो नवमी तिथि हैं उन का भी ग्रहण कर लेना,

(१) कात्यायनश्राद्धसूत्रभाष्यकार कर्क उवाच्याय आदि ।

\* अग्नि के आधान वाला जो यजमान है वह ( इन्दुक्षये ) अमावास्या तिथि में पितृयज्ञ को समाप्त कर फिर श्राद्ध का आरम्भ करे, औ यह श्राद्ध पिण्डपितृयज्ञ से पश्चात् होता है इस लिये इस श्राद्ध का नाम ( पिण्डान्वाहार्यक ) है औ प्रत्येक मास में करना होता है इस से इस को ( मासानुमासिक ) भी कहते हैं । ( अ० ३ श्लो० १२२ ) ।

† मनुजी ने पितृयज्ञ से अनन्तर श्राद्ध करने को कह कर फिर पिण्डप्रदान ब्राह्मणभोजन आदि का विधान किया है इस से होम का नाम पितृयज्ञ औ पिण्डप्रदान तथा ब्राह्मणभोजन का नाम श्राद्ध यह अर्थात् सिद्ध है ।

अत एव आश्वलायनमुनि ने तृ० अध्याय ४ कंडिका में  
‘हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टकाः’

इस प्रकार अष्टका श्राद्ध का विधान कर फिर “पूर्वेद्युः  
पितृभ्यो दद्याद्” ० (अपरेद्युरन्वष्टक्यम्) इस प्रकार से  
सप्तमी तथा नवमी को श्राद्ध का विधान किया है ।

एवं वृद्धि अर्थात् पुत्रजन्म आदि भी श्राद्ध का काल  
है, एवं सामान्य से संपूर्ण मासों का कृष्णपक्ष भी श्राद्ध  
का काल है, उत्तरायण, दक्षिणायन, प्रसिद्ध हैं, औ जिस  
दिन कृसर घृत दुग्ध तंडुल आदि द्रव्य का विशेष लाभ हो  
जाय वह भी श्राद्ध का काल जानना ।

एवं जिस दिन सदाचार उत्तम ब्राह्मण का लाभ हो

(१) हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में ( मार्गशीर्ष पौष माघ फाल्गुन इन चार  
मासों में ) जो कृष्णपक्ष की अष्टमी हैं उन में अष्टका श्राद्ध करे ।

\* इन अष्टमियों से पूर्वले दिन में भी पितरों के प्रति भदान करे औ  
अग्निपदिन नवमियों में भी अन्वष्टका श्राद्ध करे, परन्तु ( पिण्डपितृकलने )  
२ । ५ । ३ इस आश्वलायन मुनि के वचन से यह अष्टकाश्राद्ध भी पिण्ड-  
पितृपक्ष के तुल्य करे ।

(२) इसी का नाम आभ्युदयिक श्राद्ध कहते हैं अर्थात् “पुत्रजन्मविवा-  
हादौ वृद्धिश्चाद्धमुदाहृतम्, वृ० वसि० “यज्ञोद्वाहप्रतिष्ठासु मेखलाबन्धमोक्षयोः,  
पुत्रजन्मवृषोत्सर्गे वृद्धिश्चाद्धं समाचरेत्” ( जावालिः ) इत्यादि वचनों से पुत्र-  
जन्म, विवाह, प्रतिष्ठा, यज्ञ, मेखला, बन्धन से मोचन होना, वृषोत्सर्ग, इन  
का नाम वृद्धि है, इतना विशेष यहां पर यह भी जान लेना कि जैसे अमा-  
वास्याश्राद्ध में अग्निप्राप्ता आदि का आवाहन होता है तैसे वृद्धिश्चाद्ध में  
नान्दीमुख नामक पितरों का आवाहन होता है ।

(३) अर्थात्—माघ औ श्रावणमास के आरंभ का दिन । ( मृग कर्कट-  
संक्रांती द्वे तृदग् दक्षिणायने ) वृ० व०

जाय वह भी श्राद्ध का काल जानना, विपुवत् नाम मेघ औ तुला की संक्रान्ति ॐ का है औ सूर्य्यसंक्रम नाम सामान्य संक्रान्ति का है, व्यतीपात नाम योगविशेषका है, अथवा “श्रवणाश्विनिष्ठाद्रानागदैवतमस्तकैः, † यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते” इस वृद्धमनु के वचन से श्रवण अश्विनी धनिष्ठा आर्द्रा नागदैवत मस्तक, इन छः नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र और रविवारके योगवाली जो अमावास्या है उस का नाम व्यतीपात जानना, एवं गजच्छाया भी श्राद्ध का काल है, अब जिस प्रकार से चतुर्वर्ग चिन्तामणि में गजच्छाया का सप्रमाण लक्षण किया है वह निरूपण किया जाता है।

“यदेन्दुः पितृदैवत्ये हंसश्चैव करे स्थितः,

तिथिर्वैश्रवणी या च गजच्छायेति सा स्मृता”

अथपराय ।

\* (विपुवे द्वे तुलामेधौ गोळामध्यं ततोऽपराः ) वृद्धवशिष्ठ—

(१) यद्यपि संक्रांतिग्रहण से ही मेघ तथा तुला संक्रान्ति का ग्रहण हो सक्ता है तथापि विशेष रूप से भिन्न निर्देश उत्पत्ता के अर्थ जानना, अर्थात् और न होय तो इन में अवश्य ही करे ।

† नागदैवत नाम अश्लेषा नक्षत्र का है औ मस्तक नाम मृगशिर नक्षत्र का है ।

(२) अर्थात्—जिस प्रपञ्चदशी में मघानक्षत्र में चन्द्रमा स्थित होवै औ हस्तनक्षत्र में सूर्य्य विद्यमान होवै उस का नाम गजच्छाया है, यह सब इन वचनों का भाव है । बौधायन मुनि ने तो “हंसं हंसस्थिते या तु अमावास्या करान्विता, सा ज्ञेया कुञ्जरच्छायेत्येवं बौधायनोऽब्रवीत्” इस प्रकार से हस्तस्थित सूर्य्य औ मघास्थित चन्द्रमा के योग वाली जो अमावास्या है उस को गज-च्छाया माना है ।

(इन्दुः=चन्द्रमाः, पितृदेवत्ये=मघानक्षत्रे, हंसः=सूर्यः,  
करः=हस्तः, वैश्रवणी=त्रयोदशी)

“हंसे हंसस्थिते या तु मघायुक्ता त्रयोदशी,  
तिथिर्वैश्रवणी नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु”

अथविधिरात्र ।

“योगो मघात्रयोदश्योः कुञ्जरच्छायसंज्ञकः  
भवेन्मघायां संस्थे च शशिन्यर्के करस्थिते” इति,

अथविधिरात्र ।

जो कि—“हस्तिच्छायासु विधिवत्\* कर्णव्यजनवीजितः”

मघाभास्त्र ।

“अपि नः स कुले भूयाद् यो नो दद्यात् त्रयोदशीम् +  
पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च”

मघ ५० १।१०५ ।

“वनस्पतिगते सोमे छाया या प्राङ्मुखी भवेद्,

जो कि “संहिकेयो यदा सूर्यं ग्रसते पर्वसन्धिषु, गजच्छाया तु सा प्रोक्ता  
तस्यां भादं मकल्पयेत्” इस वाक्य से सूर्यग्रहण को गजच्छाया कहा है सो  
पाहवलय जी के वाक्य में सूर्यग्रहण का पृथक् ग्रहण होने से यहां पर नहीं  
हैना ।

\* हस्ती के कर्णरूप व्यजन से वीजित हुआ गजच्छाया में विधिपूर्वक  
भाद करे, यहां पर हस्ती के कान की वायु से वीजित हुआ यह कहने से  
मसिद्ध हस्ती की छायाकाय देश का ही ग्रहण है कुछ पूर्वोक्त काल का नहीं ।

+ पितरलोक प्रार्थना करने हैं कि हमारे कुल में ऐसा कोई उत्पन्न  
होवे जो त्रयोदशी के दिन मधुपृतमिधित पायस का हमारे प्रति प्रदान करे,  
तथा जिस देश में हस्ती की पूर्वमुखी छाया होय उस देश में प्रदान करें ।

(१) चन्द्रमा के वनस्पति विषयक गमन समय में जो पूर्वमुखी छाया है,

गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेद्”

माकं ले० ।

“भोजयेत्तु कुलेऽस्माकं छायायां कुञ्जरस्य च  
आकल्पकालिका तृप्तिस्तेनास्माकं भविष्यति”

विश्वधर्मोत्तर ।

इत्यादि वाक्यों में प्रसिद्ध हस्ती की छायारूप देश विशेष का कथन किया है सो यहां पर काल का प्रकरण होने से नहीं लेना ।

एवं चन्द्र औ सूर्य्यका ग्रहण भी श्राद्धका काल जानना ।

परन्तु “त्रिदशाः स्पर्शसमये तृप्यन्ति पितरस्तथा,

मनुष्या मध्यकाले तु मोक्षकाले तु राक्षसाः”

इस वृद्धवशिष्ठ जी के वाक्य से स्पर्श काल ही श्राद्ध का काल जानना मध्य औ मोक्षकाल नहीं ।

यद्यपि. “चन्द्रसूर्य्यग्रहे नाद्याद्” “सूतके मृतके चैव ग्रहणे चन्द्र सूर्य्ययोः। छायायां कुञ्जरस्याथ भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेद्” इत्यादि वचनों से सूतक पातक गजच्छाया औ ग्रहण में भोजन करना निषिद्ध है तथापि “आपद्यन्तौ तीर्थे च

यह गजच्छाया जाननी तिसमें श्राद्ध करना चाहिये, (त्रिमूर्त वसेदकं त्रिमूर्त जले वसेद्, त्रिमूर्त वसेद् गोषु त्रिमूर्त वनस्पतौ” इस श्रुति से अमावास्या के अपराह्न काल में चन्द्रमा का वनस्पति में निवास जानना औ जो तिस समय में हस्ती की पूर्वमुखी छाया है वह गजच्छाया जाननी ।

(१) हमारे कुछ में ऐसा सत्संतान उत्पन्न होवै जो कि गज की छाया में ब्राह्मणों को भोजन करावै क्योंकि ऐसा करने से हमारी कल्पपर्यन्त वृत्ति हो जाती है (यह पितरों का कथन है ।)



ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । आमश्राद्धं द्विजेः कार्यं शूद्रेण तु सदैव हि” इत्यादि वाक्यों से सूतकादि में आम श्राद्ध जानना ।

एवं श्राद्धकर्ता की जिस दिन रुचि होय वह भी श्राद्ध का काल जानना, एवं ७ युगादि तथा मन्वादि तिथियों को भी श्राद्ध का काल जानना विस्तर भय से नहीं लिखा गया यद्यपि इस याज्ञवल्क्य जी के वचन से तथा—

“योऽपक्षीयते” स पितरः” इस श्रुतिसे तथा “इतरेषु पितृयाणि” “अपरपक्षेऽपि पितृयाणि”

(१) आपत्काल में, अग्नि के अभाव समय में, तथा ग्रहण में, कच्चा अन्न ही पितरों के निमित्त देवे, और शूद्र तो सर्वदा ही आम श्राद्ध करे ।

\* अर्थात्—सत्य, वेता, द्वापर, कलि, इन चारों युगों का यथाक्रम आरम्भ का काल जो वैशाख शुक्ल तृतीया कार्तिक शुक्ल ९ भाद्रकृष्ण ११ माघ की पूर्णिमा रूप तिथि हैं वह युगादि काल जानने, एवं स्वायम्भुव १ स्वरोचिष २ उत्तम ३ तामस ४ रैवत ५ चाक्षुष ६ वैवस्वत ७ सावर्णिः ८ दक्षसावर्णिः ९ ब्रह्मसावर्णि १० धर्मसावर्णि ११ रुद्रसावर्णि १२ देवसावर्णि १३ इन्द्रसावर्णि १४ इन चतुर्दश मनुओं का यथाक्रम आरम्भ का काल जो आश्विन शुक्ल ९ कार्तिक शुक्ल १२ माघ शु० ३ भाद्र शु० ३ फाल्गुन अमावस्या पौष शु० ११ आषाढ शु० १० माघ शु० ७ आश्विन कृ० ७ आषाढ पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा, फाल्गुन पू० चैत्र पू० ज्येष्ठ पू० यह चतुर्दश तिथि हैं वह मन्वादि हैं, “युगादयः स्मृता स्येता दत्तस्याक्षयकारकाः” “मन्वन्तरादप्यश्नते दत्तस्याक्षयकारकाः” इत्यादि मत्स्यपुराण के वाक्यों से इन युगादि तथा मन्वादि तिथियोंका भी श्राद्ध का प्रशस्त काल जानना—

† जो पक्ष चन्द्रपक्षे सय करके युक्त है सो पितर है अर्थात् पितरोंका है ।

(२) जैमिनिमुनि ने अ० ६ पा० ८ में “उदगयनपूर्वपक्षादःपूर्वाक्षेपु देवानि” इस सूत्र से उत्तरायण तथाशुक्लपक्ष औ पूर्वाक्ष में देवकार्य का विधान कथन कर फिर इतर में पितृकार्य का विधान किया है इस से दक्षिणायन तथा कृष्णपक्ष औ अपराह्णकाल पितृकृत्य का समय जानना ।

‡ आपस्तम्बमध्यपटल-सू० ७ ।

इत्यादि सूत्रों से सामान्य से कृष्णपक्ष में श्राद्ध का विधान होने से औ कर्ता की रुचि को भी श्राद्ध में निमित्त होने से आश्विन कृष्णपक्ष में श्राद्ध करना निर्विवाद है। तथापि विशेष रूप से जो आश्विन कृष्णपक्ष में श्राद्ध के विधायक वाक्य हैं उन का अब उपन्यास किया जाता है जिस से यह दृढ़ हो जाय कि आश्विन में श्राद्ध अवश्य करे ।

प्रथम तो गजच्छाया में जो श्राद्ध का विशेष विधान है वह भी आश्विन के श्राद्ध में प्रमाण है क्योंकि हस्तनक्षत्र-स्थित सूर्य के समय में जो चन्द्राधिष्ठित मघानक्षत्र के संग त्रयोदशी का योग रूप गजच्छायासंज्ञक काल विशेष पूर्व निरूपण किया है वह काल विशेष आश्विन कृष्णपक्ष में ही संभव है अन्य में नहीं, इसी से ही मनु जी ने—

“नभस्यस्यापरः पक्षो यत्र कन्यां व्रजेद् रविः  
स महालयसंज्ञः स्याद् गजच्छायाद्वयस्तथा”

इस वाक्य से कन्यासंक्रान्ति युक्त ( नभस्य ) भाद्रपद के कृष्ण पक्ष को महालय औ गजच्छाया कहा है ।

एवं “यत्किञ्चिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात् तु त्रयोदशीं  
तदप्यक्षयमेव स्याद् वर्षासु च मघासु च”

(१) यद्यपि इस दृढमनुजी के वाक्य में भाद्रपद का कृष्णपक्ष कहा है आश्विन का नहीं तथापि मुख्य चान्द्रमास के मान से जिस को दाक्षिणात्य भाद्रका कृष्णपक्ष मानते हैं उसीको ही गौणचान्द्रमासके मानसे पाश्चात्य लोक अश्विन का कृष्णपक्ष मानते हैं, यह सब धर्मशास्त्रों के निषेधों में स्पष्ट है ।

इस वाक्य से मनु जी ने जो वर्षा ऋतु में मघानक्षत्र-युक्त 'प्रयोदशी' में श्राद्ध का अक्षय फल कहा है सो भी आश्विन के श्राद्ध में प्रमाण जानना ।

एवं—“उपहताः \* पितरो ये मघासु मनोजवसः सुकृतः सुकृत्याः, ते नो नक्षत्रे हवमागमिष्ठाः स्ववर्ग-भिर्यज्ञं प्रयतं जुषन्ताम् ”

( परीतुवाक्या ६ )

“येऽग्निदग्धा ये नान्निदग्धा येसुं लोकं पितरः क्षियन्ति, यौश्चविद्म यौउ च न प्रविद्म मघासु यज्ञं सुकृतं जुषन्ताम् +”

यशु० वे० आ० का० १ प्र० १० अ० १ ( भाष्या, )

इत्यादि वेदमन्त्रों में जो मघानक्षत्र में पितरों के आवाहन का विधान है सो भी इस में प्रमाण जानना ।

बृहन्मनु में तो “आषाढीमवधिं कृत्वा पञ्चमं पक्षमाश्रिताः

( १ ) अर्थात्—यहयोग आश्विन के कृष्णपक्ष में होता है,

\* जो पितर ( मनोजवसः ) मन सरीखे वेगवाले हैं तथा ( सुकृतः ) शुभकर्म करने में समर्थ हैं तथा ( सुकृत्याः ) शोभन कृत्य वाले हैं वह पितर इस मघानक्षत्र में आहूत हुये ( नो हवम् ) हमारे इस यज्ञ के प्रति ‘आगमिष्ठाः’ आगमन करें औ पितृमित्रस्वधारूप अर्घ्यों से ( प्रयतं ) संस्कृत जो यज्ञ है उस को ( जुषन्ताम् ) सेवन करें,

+ जिन पितरों को हम जानते हैं औ जिन को नहीं जानते हैं ऐसे जो अग्निदग्ध वा अग्नि के दाह से रहित हमारे पितर ( अमुं लोकं ) स्वर्गलोक में ( क्षियन्ति ) निवास करते हैं वह सब इस मघानक्षत्र में आकर हमारे यज्ञ को सेवन करें। ( यहाँ पर मनुजी के वाक्य से एकवाक्यता के लिये मघायुक्त प्रयोदशी लेनी )

( २ ) केश कर युक्त जो पितर हैं वह आपाद की पूर्णिमा रूप अवधि

काङ्क्षन्ति पितरः छिष्टा अन्नमप्यन्वहं जलम् ।  
तस्मात् तत्रैव दातव्यं दत्तमन्यत्र निष्फलम्”

इस वाक्य से साक्षात् ही श्राद्ध की पूर्णिमा से पञ्चम पक्ष में श्राद्ध का विधान किया है ।

एवं “नभस्यकृष्णपक्षे \* तु श्राद्धं कुर्याद्दिने दिने”

ब्रह्मसूत्र ।

“नभस्यस्यापरे पक्षे श्राद्धं कुर्याद्दिने दिने” काश्याजिनि

इत्यादि वचन भी प्रमाण जानने । जो कि—

“कन्यागते सवितरि यान्यहानि तु षोडश (१)  
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि सम्पूर्णवरदक्षिणैः” गौतम ।

“कन्यागते सवितरि दिनानि दश पञ्च च, (२)  
पार्वणेनैव विधिना श्राद्धं तत्र प्रकल्पयेद्” साकंवेद्य ।

इत्यादि वाक्यों में कन्याराशिस्थित सूर्य के समय

से लेकर जो आश्विनकृष्णपक्ष रूप पञ्चम पक्ष है तिस को आश्रित हुये प्रति दिन अन्न जल की आकांक्षा करते हैं इस में आश्विनकृष्णपक्ष में अवश्य देना चाहिये क्योंकि जो इस पक्ष में श्राद्ध नहीं करता है उस के किये हुये अन्य सब श्राद्ध निष्फल होते हैं ।

\* निर्णयामृत में तो ( आश्वयुक्कृष्णपक्षे तु ) यह पाठ है, अर्थात् आश्विन के कृष्णपक्ष में प्रतिदिन श्राद्ध करे ।

( १ ) कन्या राशि में सूर्य होने पर जो शुक्लप्रतिपद् के सहित कृष्णपक्ष की पन्द्रह तिथि हैं वह सम्पूर्ण तथा उत्तम दक्षिणा वाले यज्ञों के तुल्य हैं ।

( २ ) कन्यार्क में पन्द्रह दिन पार्वणश्राद्ध करे (कन्यार्क नाम कन्याराशि में स्थित सूर्य का है) ।

में श्राद्ध करने को प्रशस्त कहा है सो भी केवल कन्यार्क नहीं लेना किन्तु कन्यार्कयुक्त आश्विनकृष्णपक्ष ही लेना, इसी से ही शाठ्यायनि मुनि ने

“नभस्यस्यापरे पक्षे तिथिषोडशकं तु यत् (१)  
कन्यास्थार्कान्वितं चेत्स्यात्स कालः श्राद्धकर्मणः”

इस वाक्य से कन्यार्क युक्त आश्विन कृष्णपक्ष को श्राद्ध का काल कहा है केवल कन्यार्क को नहीं ।

श्री कोई एक तो—

“पक्षान्तरेपि कन्यास्थे रवौ श्राद्धं प्रशस्यते”

इस आदि पुराणके वाक्यमें (यदि आश्विनकृष्णपक्ष से अन्य पक्ष में भी कन्यार्क होय तो भी श्राद्ध करना प्रशस्त है) इस प्रकार कथन से केवल कन्यार्क भी श्राद्ध का काल है यह मानते हैं ।

एवं च आश्विन कार्तिक यह दोनों ही मास श्राद्ध के मुख्य काल हैं यह निश्चय हुआ (२) ।

इसी अभिप्राय से ही शतपथ में—१३।८

( १ ) आश्विन के कृष्णपक्ष में शुरु प्रतिपत् सहित १५ तिथि यदि कन्यार्क युक्त होय तो श्राद्ध का काल है ।

( २ ) अर्थात् कभी कन्यार्क आश्विन के कृष्णपक्ष में होता है औ कभी पुरु में होकर कार्तिकमास में भी कुछ काल रहता है, एवं च आश्विनकृष्ण-पक्ष तो साक्षात् विधान होने से श्राद्ध का काल है औ कार्तिक कन्यार्क के सवन में श्राद्ध का काल है यह सिद्ध हुआ ।

“अथास्मै श्मशानं कुर्वन्ति \* यौ वै कश्चन  
म्रियते स शवस्तस्मा एतदन्नं करोति, शवान्नं ह वै  
तच्छ्मशानमित्याचक्षते परोक्षम्”

इत्यादि वाक्य से मृतक के निमित्त अन्न (श्राद्ध-) का  
विधान कर “शरदि कुर्यात्” इस वाक्यसे आश्विन कार्तिक-  
रूप शरदृतुमें† मृतकके लिये श्राद्ध का विधान किया है।

औ श्राद्धायनिमुनि तो

“पुण्यः कन्यागतः सूर्यः पुण्यः पक्षश्च पञ्चमः  
कन्यास्थार्कान्वितः पक्षः सोऽत्यन्तं पुण्य उच्यते”

इस वाक्य से यह कहते हैं कि-कन्यार्क भी श्राद्ध  
का पुण्यकाल है औ आश्विन का कृष्णपक्ष भी श्राद्ध का  
पुण्यकाल है औ कन्यार्क युक्त जो आश्विन का कृष्ण पक्ष  
है सो अत्यन्त पुण्यकाल है, वास्तव से तो—

“आषाढीमवधिं कृत्वा यः पक्षः पञ्चमो भवेद् ‡  
तत्र श्राद्धं प्रकुर्वीत कन्यास्थोऽर्कोभवेन्न वा”

३३ अट्ट ।

\* जो कोई पुरुष मरता है उस का नाम शव है उस के लिये जो अन्न  
है उसका नाम शवान्न है, शवान्न को ही परोक्षरूप से श्मशान कहा जाता है,  
(विस्तरभय से समग्र धृति का उपन्यास नहीं किया है।)

† “इपश्चोर्जश्च शारदादृतु” अ० २४ मं० ६ इस यजुर्वेद के ममाण से  
आश्विनकार्तिक को शरदृतु जानना ।

‡ आषाढ की पूर्णिमारूप अवधि से जो आश्विन कृष्णपक्ष रूप पंचम-  
पक्ष है तिस में श्राद्ध करे कन्यार्क हो चाहे न हो ।

“अगतेपि रवौ कन्यां श्राद्धं कुर्वीत सर्वथा, (१)

आषाढ्याः पञ्चमः पक्षः प्रशस्तः पितृकर्मसु,, आषाढि ।

इन अनु-जावालि मुनि आदि के वचनों से आश्विन कृष्णपक्ष ७ ही श्राद्ध का प्रशस्त काल जानना, इसी से ही सर्व निबन्धकारों ने तथा सर्वदेशीय शिष्टों ने इस पक्ष को मुख्य मान कर सर्व देशों में प्रचलित किया है ।

इतना विशेष यहां पर यह भी जान लेना कि यदि संपूर्ण कृष्णपक्ष में श्राद्धकरने में पुरुष असमर्थ होय तो—

“आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे,  
मृतेहनि पितुर्यो वै श्राद्धं दास्यति मानवः ।

तस्य संवत्सरं यावत्संतृप्ताः पितरो भ्रुवम् ।

तस्मात् तत्र प्रकर्तव्यं श्राद्धं श्रद्धापरैर्नरैः ।”

इस निर्णयदीपकोपन्यस्त नागरखण्ड के प्रमाण से पिता आदि का जो मरणदिन है उसी एक तिथि में ही करे, परन्तु करे अवश्य क्योंकि यह श्राद्ध नित्य है (२) कुछ काम्य नहीं ।

(१) कन्यार्क न भी होंगे तो भी पंचम पक्ष में श्राद्ध करे क्योंकि पितृकर्म में पंचम पक्ष ही प्रशस्त है कुछ कन्यार्क युक्त ही नहीं ।

\* एवं “आदौ मध्येऽवसाने वा यत्र कन्यां व्रजेद् रविः । स पक्षः सकलः पूज्यः श्राद्धपौडगर्क मतिः” यह काष्णानिनि का वचन भी इस पक्ष में प्रमाण जानना क्योंकि आश्विन कृष्णपक्ष के आदि वा मध्य वा अन्त में कन्यार्क संबन्ध प्रायः कर के अवश्य होता है ।

(२) इसी से ही भट्टि मुनि ने “सूर्ये कन्यां गते श्राद्धं यो न कुर्याद्

भाव यह है कि—नित्य-नैमित्तिक-काम्य भेद से श्राद्ध तीन प्रकार का है, तहां—

“कुर्यादहरहः श्राद्धं मन्नाद्येनोदकेन वा” मृ० ।

इस वाक्य से जो प्रतिदिन विधान किया है वह नित्य जानना ।

तथा “मृताहेऽहरहः दर्शश्राद्धं यच्च महालये ।

तन्नित्यमुदितं सद्भिर्नित्यवद्धि विधानतः”

इस कात्यायनमुनि के वाक्य से मृतदिन, प्रतिदिन, अमावास्या, महालय में जो किया जाय वह भी नित्य जानना, एवं अष्टका व्यतीपात आदि नियत काल में जो किया जाय वह भी नित्य जानना ( १ ) ।

औ जो अनियत पुत्रजन्म आदि काल में किया जाय वह नैमित्तिक जानना ।

औ जो फलविशेष की कामना के लिये भिन्न २ तिथि नक्षत्र-वारों में किया जाय वह काम्य जानना ( २ ) ।

गृहाश्रमी । धनं पुत्राः कुतस्तस्य पितृनिःश्वासपीडया ” इस वाक्य से इस में श्राद्ध न करने वाले के प्रति पितरों के शाप से सन्तान घनादि का नाश रूप अनर्थ बोधन किया है ।

(१) अर्थात्—मृतदिन तथा अमावास्या, अष्टका, व्यतीपात, महालय आदि जो काल हैं वह अपने २ समय में नियम से होने से नियतकाल कहे जाते हैं औ पुत्रजन्म-ग्रहण आदि अनियमसे होने से अनियत कहे जाते हैं, तहां जो नियत काल में किया जाय वह नित्य है औ जो अनियत काल में किया जाय वह नैमित्तिक जानना, न करने से पाप का जनक होने से जो अवश्य किया जाय यह नित्यनैमित्तिक का साधारण लक्षण है ।

(२) अर्थात्—कन्या, जामाता, अजा आदिपशु, सत्संतान, द्यूतविजय,



अब यदि जो कोई यह संदेह करे कि (जो आप ने वृद्ध मनु के नाम से वाक्य लिखे हैं वह वृद्धमनु क्या है) तो उस संदेह के निवारणार्थ नारदस्मृति के आरम्भ का पाठ प्रदर्शन किया जाता है जिस से यह वृद्ध निश्चय हो जाय कि आज कल प्रचलित मनुस्मृति का मूलभूत जो मानव धर्मशास्त्र है वह वृद्धमनु है ।

“इह हि भगवान् मनुः\* प्रथमं सर्वभूतानुग्रहा-

पदिष्यति, नमेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्यन्च्छादस्य योग्यं स्वपितृन् नतोस्मि,  
तृप्यन्तु भक्त्या विमरो मयैतौ मुनौ ततौ वर्त्मनि मारुतस्य' वाराहपु० अ०  
१३ श्लो० ५७५८ इस में प्रमाण है ।

\* भगवान् मनु ने पहिले सर्वभूतों पर अनुग्रह के लिये आचारस्थिति का हेतुभूत एक आत्मा निर्माण किया, जिस में लोकसृष्टि, १ भूतविभाग, २ संदेशप्रमाण, ३ पर्यवेक्षण लक्षण, ४ वेदविचार, ५ वेदाङ्गविचार, ६ महाविधान, ७ आचार, ८ व्यवहार, ९ वृष्ट्युत्पादन, १० राजवृत्त, ११ वर्णाश्रमाविभाग, १२ विवाहन्याय, १३ स्त्रीपुंसविकल्पा १४ दायानुक्रम, १५ श्राद्धविधान, १६ शौचाचारविकल्प, १७ मक्षयाऽभक्ष्यलक्षण, १८ विक्रयाऽविक्रयमीपांसा, १९ पापों के भेद, २० स्वर्गनरकदर्शन, २१ प्रायश्चित्त, २२ ब्रह्मज्ञान, २३ रहस्यस्थान, २४ यह चौबीस प्रकरण हैं, फिर मनु जी ने इन सब प्रकरणों को एक सहस्र अशीति ८० अध्यायों में एकलक्ष श्लोकों द्वारा उपनिबद्ध कर लोक में प्रचार के लिये देवर्षिनारद के प्रति प्रदान किया, नारदजी ने अध्ययन कर मन में यह विचारा कि महान् विस्तीर्ण होने से मनुष्यों को धारण करना यह सुकर नहीं है इस से चारह हजार श्लोक में उस का संक्षेप किया औ मार्कण्डेय के प्रति प्रदान किया, औ सुपति भार्गव (मार्कण्डेय) ने भी मनुष्यों की आयु के ह्रास से अक्षयशक्ति मान कर इस को चार सहस्र श्लोकों से संक्षेप कर लोकों में प्रचार किया, तहां जो एक श्लोक स्वरूप है उस का देवादि अध्ययन करते हैं इतर वा मनुष्य अध्ययन करते हैं, इन में से जो एक औ चारह हजार श्लोकवाला शास्त्र है वह वृद्धमनु औ वृद्धमनु इस नाम से व्यवहृत होता है औ

र्थमाचारस्थितिहेतुभूतं शास्त्रं चकार, यत्र लोकसृष्टि-  
 भूतविभागः, सद्देशप्रमाणं, पर्वल्लक्षणं, वेद, वेदाङ्ग,  
 यज्ञविधानमा, चारो, व्यवहारः, कण्टकशोधनं, राजवृत्तं,  
 वर्णाश्रमविभागौ, विवाहन्यायः, स्त्रीपुंसविकल्पो, दाया-  
 ऽनुक्रमः, श्राद्धविधानं, शौचाचारविकल्पो, भक्ष्याऽभक्ष्य-  
 लक्षणं, विक्रेयाऽविक्रेयमीमांसा, पातकभेदाः, स्वर्ग-  
 नरकानुदर्शनं, प्रायश्चित्तान्युपनिषदो, रहस्यस्था-  
 नानि, इति चतुर्विंशतिप्रकरणानि १ तदेतदत्रश्लोक-  
 शतसहस्रेण साशीतिनाध्यायसहस्रेण च भगवान्मनु-  
 रुपनिबध्य देवर्षये नारदाय प्रायच्छत् २ स च तस्मा-  
 दधीत्य महत्तान्नायं ग्रन्थः सुकरो मनुष्यैरेव धारयितु-  
 मिति द्वादशभिः सहस्रैः संचिक्षेप तं च महर्षये  
 मार्कण्डेयाय प्रायच्छत् ३ सुमतिरपि भार्गवस्तस्माद-  
 धीत्य तथैवायुर्ह्रासादल्पीयसी शक्तिर्मनुष्याणामिति  
 चतुर्भिः सहस्रैः संचिक्षेप तदेतत् पितृमनुष्या ह्यधी-  
 यते, विस्तरेण शतसहस्रं देवगन्धर्वादयः, तत्राय-  
 माद्यः श्लोकः—आसीदिदं तमो भूतम्' इत्यादि । ”

जो आज कल प्रचलित मनुस्मृति है वह भार्गवकृत संग्रह है इसी से इस के अध्यायों के अन्तों में ' भृगुप्रोक्त ' यह लिखा है यद्यपि कुल्लूकभट्ट की टीका के अनुसार इस मनुस्मृति का तीन सदस्य से भी न्यूनश्लोक है तथापि अन्य टीकाओं के देखने से चार हजार तक संख्या का संभव जान लेना क्योंकि सर्वज्ञनारायण, राघवानन्द, रामचन्द्र, गोविन्द आदि व्याख्याकारों ने बहुत से ऐसे श्लोकों का व्याख्यान किया है जो कि कुल्लूक से छोड़ दिये हैं ।

अब प्राचीननिबन्धकारों ने जो जो वचन बृहन्मनु तथा बृद्धमनु के नाम से लिखे हैं उन वचनों का कुछ उपन्यास किया जाता है जिस से यह निश्चय हो जाय कि उन के समय में वह मानवशास्त्र प्रचलित था,

“मध्ये वा यदि वाप्यन्ते यत्र कन्यां रविर्त्रजेत् (१)  
पक्षः स कालः संपूर्णः श्राद्धं तत्र विधीयते” श्रुतिचन्द्रिका ।

तृष्णं वा यदि वा काष्ठं पुष्पं वा यदि वा फलम् (२)  
अनाष्टं तु गृह्णानो हस्तच्छेदनमर्हति । श्रु. च. ।

पिता पितृव्यो भ्राता वा चैनामध्यापयेत्पुरा, (३)  
स्वगृहे चैव कन्याया भैक्ष्यचर्या विधीयते  
वर्जयेद्भोजनं दण्डं जटाधारणमेव च”

श्रुतिचन्द्रिका ।

“विवाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला । (४)

तस्याः शुद्धेः परं कार्यं मङ्गलं मनुरब्रवीत्

पद्मभिरार ।

(१) जिस पक्ष के मध्य वा अन्त में कन्या में सूर्य होय वह संपूर्ण पक्ष ही श्राद्ध का काल है ।

(२) तृष्ण, काष्ठ, पुष्प, फल को बिना आक्षार से ले तो उस का दाय्य काटे ।

( ३ ) पिता वा पिता का भ्राता वा अपना भ्राता ही कन्या के प्रति पढ़ावे अन्य नहीं, औ अपने घर में ही कन्या के लिये भिक्षाचरण का विधान है अन्य घर में नहीं, औ जैसे ब्रह्मचारी के लिये चर्म तथा दण्ड एवं जटाधारण का विधान किया है तैसे कन्या के लिये नहीं, अर्थात् इन सब का त्याग करे ।

( ४ ) विवाह, व्रत, चूडाकर्म में यदि माता रजस्वला होय तो शुद्धि से अनन्तर यह मङ्गलकृत्य करना चाहिये यह मनु जी का कथन है ।

दानप्रकारके चतुर्वर्गविनामर्षी हेमाद्रि —

सन्ध्ययोरुभयौर्जप्ये भोजने दन्तधावने, (१)  
पितृकार्ये च दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः,  
गरूणां सन्निधौ दाने योगे चैव विशेषतः,  
एषु मौनं समातिष्ठन् स्वर्गं प्राप्नोति मानवः,

ब्रतखण्डे हेमाद्रि —

“विहितस्याननुष्ठानमिन्द्रियाणामनिग्रहः । (२)  
निषिद्धसेवनं नित्यं वर्जनीयं प्रयत्नतः ”

याज्ञवल्क्ये हेमाद्रि —

“यत्किञ्चिन्मधुमंमिश्रं गोक्षीरं घृतपायसं ।  
दत्तमक्षयमित्याहुः पितरस्त्वेव देवताः ।” (३)  
“मते देशान्तरे पत्यो गन्धमाल्याञ्जनानि च (४)  
दन्तकाष्ठं च ताम्बूलं वर्जयेद् वनिता सती” स्मृतिरवाकर ।

(१) प्रातः तथा सायंसंध्या में, तथा जप, भोजन, दन्तधावन को करने समय में एवं दैव तथा पितृकार्य में, औ मूत्र तथा मल के त्यागकाल में औ गुरुओं के समीप तथा दान काल में एवं योगाभ्यास समय में जो पुरुष मौन को धारण करता है वह स्वर्ग का प्राप्त होता है ।

(२) वेदविहित कर्म का न करना तथा इन्द्रियों का अनिग्रह तथा निषिद्ध सेवन यह ‘तीनों’ अवश्य ही मयत्न पूर्वक पुरुष को त्यागना चाहिये ।

(३) मधुकर मिश्रित गोक्षीर वा घृत वा पायस जां कुछ पितरों के मति दिया जाय उस का पितरूप देवता अक्षय कहते हैं ।

(४) पति के परदेश जाने पर पतिव्रता स्त्री गन्ध, माला, अञ्जन, दन्त-धावन, ताम्बूल, इन का परित्याग करे ।

“जपस्तपस्तीर्थसेवा प्रव्रज्या मन्त्रसाधनं, (१)  
देवतासाधनं त्रैवं स्त्रीशूद्रपतनानि पट्” श्रद्धासाधनम् ।

“यः कारणं पुरस्कृत्य व्रतचर्या निषेवते (२)  
पापं व्रतेन संछाद्य वैडालं नाम तद् व्रतम्” पराभरणायम् ।

“सर्वदेशेषु पूर्वाह्णे मुख्यं स्यादुपनायनम् (३)  
मध्याह्णे मध्यमं प्रोक्तमपराह्णे च गर्हितम्” संस्कारकीलम् ।

“जातकर्मादिमंस्काराः स्वकाले न भवन्ति चेद् (४)  
चौलादर्वाक् प्रकुर्वीत प्रायश्चित्तादनन्तरम्”

पारायणमहलपर्वयोगम् ।

“भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनं (५)  
नरकं पीडने चाऽस्य तस्माद्यत्नेन तं भरेत्” विश्वामित्रायम् ।

(१) जप, तप, तीर्थसेवन, संन्यास, मन्त्रसाधन, देवतासाधन, यह छः कर्म स्त्री तथा शूद्र के लिये पापजनक है ।

(२) जो पुरुष किसी पाप की निवृत्ति कर कारण के लिये व्रतचर्या को सेवन करता है औ व्रतद्वारा अपने पाप को छिपाया चाहता है उस पुरुष का किया हुआ व्रत वैडालव्रत कहा जाता है ।

(३) सर्व देशों में पूर्वाह्न उपनयन का मुख्य काल है औ मध्याह्न मध्यम काल है औ अपराह्न निन्दित है ।

(४) यदि जातकर्म नामकरण आदि संस्कार अपने उचित काल में न होय तो मायधित कर चूडाकर्म से पूर्व ही उन को करे देर न करे ।

(५) स्त्री, पुत्र, भृत्य आदिक पोष्य वर्ग वा जो पालन है वह स्वर्ग का साधन है औ इन को जो पीड़ा देनी है वह नरक का साधन है इस से इन वा वधव्य पोषण करे ।

“पतितस्तु सुतः छीवः पंगुश्चोन्मत्तको जडः (१)

अन्धोऽचिकित्सरोगार्तो भर्तव्यास्ते निरंशकाः” दायकमसपद ।

“मानुषास्थि शवं विष्टा रेतो मूत्रार्तवं वसा (२)

स्वेदाश्रुदूषिकाश्लेष्ममद्यं चामेध्यमुच्यते”

मिताचरा ।

हृदयगु — ( मदनपारिजात )

“ न पिवेन्न च भुञ्जीत द्विजः सव्येन पाणिना  
एकहस्तेन न जलं शूद्रेणावर्जितं पिवेद् ” (३)

“ ताम्रपात्रे न भुञ्जीत भिन्नकांस्ये मलाविले,  
पलाशपद्मपत्रेषु गृही भुक्तेन्दवं चरेद् ” (४)

“ छीवाद्या नोदकं कुर्युः स्तेनव्रात्या विधर्मिणः  
गर्भभर्तृद्रुहश्चैव सुराप्यश्चैव योषितः” (५)

(१) पतित, नपुंसक, पटु, उन्मत्त, जड, अन्ध. अनिवार्य्य कष्ट आदि रोगयुक्त, जो पुत्र है वह पिता के अंश का भागी नहीं होता है किन्तु भोजना-  
च्छादन का अधिकारी होता है ।

(२) पुरुष की हड्डी, मूत्रदा, विष्टा, वीर्य्य, मूत्र, स्त्री का कृतकालिक रज,  
चरवी, पसीना, नेत्र का जल, कान की मल, श्लेष्म, मदिरा, यह सब पदार्थ  
अमेध्य ( अपवित्र ) हैं ।

(३) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य वामदस्त से न भोजन करें औ न जलपान करें  
औ एक हाथ से जल भी न पीवें एवं शूद्र का दिया हुआ जल भी न पीवें ।  
( कलिकाता सोमायटी मुद्रित पत्राङ्क ३२९ )

(४) ताम्र के पात्र में तथा फूटे हुये कांस्यपात्र में तथा मलयुक्त पात्र में  
गृहस्थी भोजन न करे, औ यदि गृहस्थी पलाश तथा पद्म के पत्र में भोजन  
करे तो चान्द्रायण व्रत करे नहीं तो पाप होता है ( पृ० ३२९ ) ।

(५) नपुंसक, चोर, संस्कार रहित, विधर्मी पुरुष तथा गर्भघातक, पति-

- “ महानद्यन्तरं यत्र गिरिर्वा व्यवधायकः  
वाचो यत्र विभियन्ते तद्देशान्तरमुच्यते ” (५)
- “ श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रानागर्देवतमस्तकैः,  
यद्यमा रविवागेण व्यतीपातः स उच्यते ” (१)
- “ न नियुक्तः शिखावर्जं माल्यं शिरसि धारयेद् ” (२)
- “ जीवन् जातो यदि ततो मृतः सूतकमेव तु  
सूतकं सकलं मातुः पित्रादीनां त्रिरात्रकम् ” (३)
- “ नाध्यापयति नार्थीते † स ब्राह्मणब्रुवः स्मृतः ”  
नरकारणः ।
- “ राजा लब्ध्वा निधिं दद्याद्द्विभ्यः ऽर्धं द्विजः पुनः ” (४)

विद्वानशेषमादद्यात्स सर्वस्य प्रभुर्यतः

इतरेण निधौ लब्धे राजा षष्ठांशमाहरेद्

अनिवेदितविज्ञाता दाप्यस्तं दण्डमेव च” दायतल ।

“शूद्रोप्येवंविधः कार्य्यो विना मंत्रेण संस्कृतः” (१)

संस्कारमयम् ।

“वस्त्रेणाच्छाद्य तु करं दक्षिणं यः सुदा जपेत् (२)

तस्य तत्सफलं जप्यं तद्धीनमफलं स्मृतम्” बाचारमयम् ।

“स्त्रीधनं स्यादपत्यानां दुहिता च तदर्थिनी, (३)

अप्रप्ता चेत्समूढा तु लभते मानमात्रकम्” व्यनकारमयम् ।

“पतत्यर्धं शरीरस्य भार्य्या यस्य सुरां पिबेत् (४)

से अर्धभाग ब्राह्मणों को दे, औ यदि ब्राह्मण को निधि प्राप्त होय तो वह सब ही ग्रहण करे क्योंकि ब्राह्मण सर्व का स्वामी है, यदि वैश्य आदि को निधि का लाभ होय तो राजा के प्रति छठा द अंश प्रदान करे, औ न निवेदन करे तो उस के प्रति राजा दण्डप्रदान करे ।

(१) शूद्र के भी जातकर्म आदि संस्कार करे परन्तु वैदिक मंत्रों के उच्चारणपूर्वक न करे ।

(२) जो अपने दक्षिणहस्त को वस्त्र से आच्छादित कर जप करता है उस का जप सफल है औ अन्य का निष्फल है ।

(३) स्त्री के धन का अधिकारी पुत्र तथा कन्या है परन्तु यदि कन्या अविवाहिता होवै तब तो पूर्ण अधिकारवाली है औ विवाहिता होवै तो कुछ २ संस्कार की अधिकारिणी है ।

(४) जिस की भार्य्या सुरा पान करती हो वह पुरुष भी शरीर से अर्ध-पतित जानना, असे पतित का भी विना मरणान्त मापयित से अन्य कोई मापयित नहीं है ।



पतितार्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते” प्रायश्चित्तमयूख ।

“श्यालके तत्सुते चैव सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति (१)

षण्डं तु ब्राह्मणं हत्वा शूद्रहत्यायूतं चरेद्” मृद्वक्षसाधर ।

“पिता पितामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजोऽग्रजाः (२).

उपायनेऽधिकारी स्यात्पूर्वाभावे परः परः” विधिविहितम् ।

“यो भाटयित्वा शकटं नीत्वा नान्यत्र गच्छति, (३)

भाटं न दद्याद् दाप्योसावनूढस्यापि भाटकम्” ।

विधादधिकारमपि ।

“त्रयोदश्यान्तु सप्तम्यां चतुर्थ्यामर्धरात्रतः (४)

अर्वाक् नाध्ययनं कुर्यादिच्छेत् तस्य परायणम् ।

रात्रौ यामह्यादर्वाक् यदि पश्येत् त्रयोदशीम्

(१) सांला तथा साले का पुत्र यदि मरे तो शीघ्र ही स्नानपात्र से शुद्धि जाननी, और यदि नपुंसक ब्राह्मण की हत्या करे तो शूद्रहत्या का प्रायश्चित्त करे।

(२) पिता पितामह भ्राता, ज्ञाति, गोत्रज, अग्रज इन में से पूर्व २ के अभाव होने पर पर २ को उपनयन कराने में अधिकार जानना ।

( ३ ) जो गाड़ी भाड़ाकर अपने गृह में लेजाकर फिर किसी प्रतिबन्धक से न जाने पर भाड़ा न दे तो राजा को उचित है कि न भी सवारी करे तो भी भाड़ा दियावै ।

( ४ ) त्रयोदशी सप्तमी चतुर्थी इन तिथियों में अर्धरात्रि से पूर्व अध्ययन मत करे किन्तु परायण्य करे, और यदि द्वादशी के दिन अर्धरात्रि से पूर्व त्रयोदशी का योग होय तो उस राति में महादेव जी के आराधन से बिना और कोई काम न करे क्योंकि अन्य सब कामों के वह नाश करने वाली है ।

सा रात्रिः सर्वकर्मघ्नी शङ्कराराधनं विना” स्मृतिरमाकर ।

‘दशाहाभ्यन्तरे बाले प्रमीते तस्य बान्धवैः (१)

शावाऽऽशौचं न कर्तव्यं सूत्याशौचं विधीयते” वितापरा ।

‘येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरितीकृताः (२)

मयूराश्चित्रिता येन स ते वृत्तिं विधास्यति”

भागवतसू० १. ५. १ श्लो० १६ टीका ।

विस्तरभय से अन्य वचनों का उपन्यास नहीं किया गया है ० ।

ओम्—श्री० ।

“व्यूहकेशाङ्कभूवर्षे वैक्रमे वैक्रमे पुरे \*

माघमासाऽसिते पक्षे गुरौ याम्ये तिथौ शुभे,

( १ ) दश दिन के भीतर ही यदि उत्पन्न हुआ बालक मृतक हो जावे तो उसका पातकाशौच मत करे किन्तु सूतकाशौच करे ।

( २ ) जिस परमात्मा ने हंसों को श्वेत किया है औ शुकों को हरित किया है औ मयूरों के पांखों को चित्रित किया है सोई तुम जीविका प्रदान करेगा सोच मत करो ।

\* इसी प्रकार से ‘मधुपर्कं च सोमे च तांबूलस्य च भक्षणं, फलमूले चक्षुदण्डे न दोषं प्राह वै मनुः’ इत्यादि प्रकार के मनु के नाम से जो पुराण तथा रामायण भारतादिकों में श्लोक आते हैं वह भी वृद्धमनु के जानने, मधुपर्क, सोमरस, फल, मूल, इक्षु, तांबूल इन के भक्षण के पश्चाद् आचमन न भी करे तो कुछ दोष नहीं है ।

\* अर्थात् महाकाल महेश्वर के निवास भूत विक्रम जी की वज्रयिनी

# महाकालालये श्रौतसर्वस्व पूर्णतामितम् ”

नमोऽत्तर्यामिणे गुरवे ।

इति श्रीलनिखिलशास्त्रनिष्ठातस्वामिषाळरामोदासीनोद्भासित

श्रौतसर्वस्वम् ।

नामक एरी में विक्रम जी के १९५४ वर्ष में माघकृष्ण पक्ष गुरुवार त्रयोदशी को यह ग्रन्थ समाप्त हुआ ।

हरि ओम् शान्तिः ।

इति श्रीमदुदासीन स्वाम्यात्मस्वरूपोद्दीपितमपेक्षितानुक्तपूर्ण विवरणम्

# अग्रद्विशीधन ।

पृष्ठ	पङ्क्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्
४	११	सद्यः	सद्यः न
२५	१	सपिण्ड०	स पिण्ड०
२५	१४	निर्णीत	निर्णीत
२६	१६	अन्वववलम्बं	अन्ववलम्बं
२७	५	प्राचीनावीती	प्राचीनावीती (१)
२७	१८	शिरोवधार्य	शिरोवधाय
२७	२२	मत	मन
३०	१६	भाजने	भोजन
३५	१	विमघ्नते	विमथ्नते
३६	१	यौभौ	योभौ
३६	१३	खड्गसदृश	खड्गसदृश
३७	१६	दर्भे०	दर्भे०
४०	१०	च्छिन्ने र	च्छिन्नैर
४१	५	इध्यम्	इध्मम्
४६	१३	आचार्य	आचार्य
४७	१५	हित्र्यत	हि=यतः
४७	१८	जीवना	जीवता
४६	६	आकाङ्क्षा	आकाङ्क्षा के
५४	१८	प्राश्यां ३	प्राश्या ३
५६	१८	पिथलाद	पिप्पलाद